ISSN 0976-8645

JAHNAVI SANSKRIT E-JOURNAL

A portal of Sarasvatniketanam

पञ्चविंश-षड्विंशाङ्कयोः भवतां सर्वेषां मङ्गलाभिनन्दनम्।

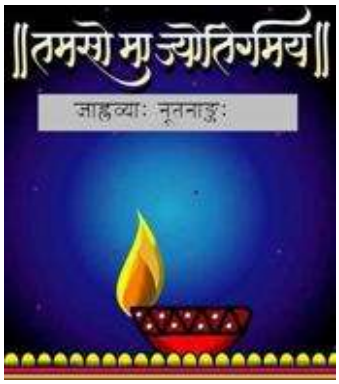

www.sarasvatniketanam.org

www.jahnavisanskritejournal.org

मुख्यसम्पादकः	विद्यावाचस्पति-डा.सदानन्दझा
पुनर्वीक्षकाः	आचार्यविद्वान् सुमनः, डा. अनिलप्रतापगिरिः, डा. जानकीशरण-आचार्यः
विशिष्टपुनर्वीक्षकाः	आचार्यरामानुजदेवनाथमहोदयाः, आचार्या गीताशुक्लमहोदया
सम्पादकाः	डा. नरेशशर्ममहोदयः, श्रीश्रीनाथधरद्विवेदिमहोदयः, बिपिनकुमारझा
प्रकाशकः	बिपिनकुमारझा
सम्पादनसहायिके	सुश्रीरजनीनेगी, श्लेषासचिन्द्र
प्रकाशनसहायिका	डा. सरिताश्रीवास्तवमहोदया
प्रतिनिधयः (लोकार्पणसन्दर्भे)	श्रीसौरभकौशिक-श्रीसुमितकुमार-डा.केवलकृष्णमहोदयाः
तकनीकिसहायकः	रित्जटेक्नोलोजी, बङ्गलुरु

सारस्वत-निकेतनाख्या संस्कृतसेवासरणिः पूज्यगुरुपादैः कीर्तिशेषैः राष्ट्राधीशपुरस्कृतैः **देवानन्दझावर्य्यैः** प्रातस्मरणीयैः स्वनामधन्यैः राष्ट्राधीशपुरस्कृतैः **तुलानन्दाऽपरनामनारायणझावर्य्यैश्च** उद्घाटिता विद्यावाचस्पत्युपाधिभाक्-सदानन्दझाऽनुगता एषा सरणिः बिपिनझाद्वारा संस्कृतानुरागिसहयोगैः विविधेषु रूपेषु संस्कृतप्रचार-प्रसाराय सन्नद्धा वर्तते तेषु रूपेषु एवायं प्रबन्धः जाह्नवी संस्कृत ई जर्नल नाम्ना विश्वेऽस्मिन् प्रथितः।

JAHNAVI-A First Electronic Peer-reviewed Quarterly Refreed Sanskrit *Triveni* (Sanskrit, Hindi & English) Journal.

INDEX

I	प्रस्फुटम्	
1	सम्पादकीयम्	सदानन्दझा
2	प्रकाशकीयम्	बिपिनकुमारझा
II.A	साहित्यानुरागः	
1	किरातार्जुनीय में हिमालय के पर्यावरणीय अवयव	1.सुश्री मनीषा कश्यप 2. विनीत घिल्डियाल
2	याज्ञवल्क्यस्मृतौ स्तेयप्रकरणे समाजव्यवस्थायाः परिशीलनम्	हीरालालदाशः
3	अष्टादशशताब्द्यां काश्मीरशैवदर्शनम्	नरेन्द्रभारती
4	धर्मशास्त्रोक्तानां संस्काराणां प्रासङ्गिकता	एम्. गजलक्ष्मी
5	अध्यात्मरामायण में निहित सांस्कृतिक तत्त्वों की अद्यतन उपयोगिता	गीताशुक्ला
6	ऋग्वेदे मनस्तत्त्वपरिशीलनम्	नीलमाधवप्रधानः
7	अथर्ववेद औषधीनां परिशीलनम्	लिपनकुमारमाझि
8	अथर्ववेदे प्रकृतेः स्वरूपम्	निर्मलराउलः
9	वास्तुमालादिशा गृहे ग्राह्याग्राह्यवृक्षाणां समीक्षणम्	गीताञ्जलिनायक
10	प्रस्थानत्रयी में वर्णव्यवस्था	सुश्रीसस्मितापति
11	वर्णव्यवस्था-विषये संस्कृतवाङ्मयस्य मतम्	विवेकशर्मा
12	चित्त के सन्दर्भ में गुणत्रय की महत्ता	कृष्णा शर्मा

प्रस्फुटम्

सम्पादकीयम्

डॉ. सदानन्द झा[1]

एकार्णवस्य सलिलं रसरूपमेव
पात्रं विना नहि रसस्थितिरस्ति कचित्।
या सर्वभूतविषये किल शक्तिरूपा
तां सर्वभूतजननीं शरणं गतोस्मि॥

अये शास्त्रविचारपरिशीलनलब्धादरविद्वद्वराः शास्त्ररसिकाः संस्कृतानुरागिणश्च!!!

विश्वस्य प्रथमान्तर्जालीयसंस्कृतत्रैमासिकपत्रिकायाः जाह्नव्याः चतुर्विंश-पञ्चविंशाङ्कौ श्रीमतां तत्रभवतां करकमलयोः साम्प्रतं समर्पयन्नमन्दमानन्दं लेभे।

जानन्त्येव यत् प्रतिस्पर्द्धात्मके युगे एतर्हि नैकाः संस्कृतपत्रिकाः नानादिग्देशेभ्यः अन्तर्जालमाध्यमेन सञ्चालिताः सन्ति किन्तु भवादृशां विदुषां कृपालवमासाद्य पत्रिकेयं सारस्वतरङ्गस्थले नरीनृत्यते। एतदर्थं मोमुद्यते मे मनः। अङ्कस्यास्य लोकार्पणकार्यक्रमः कुरुक्षेत्रविश्वविद्यालयपरिसरे निर्धारितो वर्तते। यत्रास्माकं परमसौभाग्यवशात् हरियाणास्थकुरुक्षेत्रविश्वविद्यालयस्य संस्कृत-प्राच्यविद्यासंस्थानस्य निदेशकेन, संस्कृत-पालि-प्राकृतविभागाध्यक्षेण विविधशास्त्रनिष्णातेन नयैकवद्धपक्षपातेन स्वनामधन्येन प्रथितयशसा आचार्यललितकुमारगौडमहाशयेन नानाकार्यक्रमव्यस्तेनापि जाह्नवीलोकार्पणकृते कृपानुमतिः प्रदत्ता वर्तते। एतदर्थं तान् प्रति भूयोभूयः कृतज्ञतां बिभर्ति जाह्नवीपरिवारः।

अस्मिन् अङ्के नानाशास्त्राणां शोधनिबन्धाः नीरक्षीरविवेकेनात्र समावेशिताः। एतदर्थं येषां पण्डितानां महत्वाधायिनो लेखाः सम्प्राप्तास्तान् सादरं स्तवीमि। पत्रिकायां समाहितेनापि मनसा क्वचिद्दोषो भवेत्तर्हि समाधेयो दोषज्ञैः का कथाऽस्मादृशामिति सादरं निवेद्य प्रणतोऽस्मि।

---

[1] पत्रिकायाः मुख्यसम्पादकः।

अन्ते महामहोपाध्यायगोकुलनाथस्य 'नटयसि नाथ यथा तथा नटामि' इति सुधासूक्तिं स्मरन् पार्वतीजानिमनाथनाथं विश्वनाथं सकलजनकल्याणाय सुरभारतीविकासाय च कामये।

श्रैमत्कः

झोपाख्यः सदानन्दः

लखनौरम्, विहारः

संस्कृतदिवसः

प्रकाशकीयम्

विपिनकुमारझा[2]

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो,
ब्रह्माहरश्च नहि वक्तुमलं बलञ्च।
सा चण्डिकाऽखिलजगत्परिपालनाय,
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु॥

छलप्रपञ्चात्मके समाजेऽस्मिन् नैकाः घटनाः प्रतिदिनमाकर्षयन्ति मानवान्। सद्य एव भारतवर्षस्य चूडायमाणे काश्मीरप्रदेशे या घटना घटिता तया स्तब्धोऽस्ति सभ्यसमाजः। विस्मृत्य स्वीयं निद्रासुखदुःखादिकं राष्ट्ररक्षाधर्मध्वजसंवाहकाः आरक्षिणः दण्डयन्ति आतङ्कवादिनः, तानेव आरक्षिजनान् तत्रत्य केचन जनाः तिरस्कुर्वन्ति। अहो! ईदृशी समाजस्य दुरवस्था।

अस्मिन्नेव क्रमे भारतवर्षस्य हृद्भूते मध्यप्रदेशे जलाप्लावनात् अनेके जनाः क्रूरेण कालेन कवलिताः। तत्र क्वापि मातुः करुणक्रन्दनम्, क्वापि भर्तृवियोगिनीनां चीत्कारः, क्वापि गृहचिन्ता, क्वापि अन्नचिन्ता, क्वापि वसनचिन्ता इत्येव सर्वत्र दृष्टिपथमायातः।

आभ्यां घटनाभ्यां विचलिताः विविधभाषाभाषिणः, विविधप्रदेशवास्तव्याः जनाः एकीभूय तत्रत्यानां जनानां दारुणं दुःखमनुभूय सहयोगपरायणाः सञ्जाताः। वस्तुतः भारतवर्षस्य इयमेवाऽपूर्वा संस्कृतिरस्ति यत् आगतायां सत्यां कस्यामपि विपदि सर्वे एकीभूय निवारयन्ति समस्याः सर्वाः।
एवमेव यथा मध्यप्रदेशादिषु स्वीयप्रत्यक्षाप्रत्यक्षसहयोगेन सर्वे भारतीयाः एकत्र सम्मिलिताः तथैव एषा पत्रिकापि यत्र विश्वम्भवत्येकनीडमितिभगवद्वाक्यमनुसरन्ती एकीकरोति सर्वान् संस्कृतानुरागिणः।

[2] प्रकाशकः सम्पादकश्च

इदानीञ्च आचार्यविद्वानसुमनमहोदयः, आचार्या गीताशुक्लमहोदया, अपि च श्रीयुत्च्छ्रीनाथधरद्विवेदी, डा. नरेशशर्मा, डा. जानकीशरणः, सुश्रीरजनीनेगी, श्लेषासचिन्द्र, श्रीसुमितकुमारः, श्रीसौरभकौशिकः, डा.केवलकृष्ण इत्येवमादयो विपश्चिदपश्चिमाः साक्षात् सम्पादने प्रकाशने पुनर्वीक्षणे च स्वपरिश्रममर्पितवन्त इत्यत एतेषां कृते भूयोभूयः कार्तज्ञं विभर्ति जाह्नवी। तथा च श्रीरणवीरपरिसरप्राचार्येण विविधविद्याविद्योतितान्तःकरणेन आचार्यरामानुजदेवनाथमहोदयेन एषा समग्रा जाह्नवी अक्षिलक्ष्यीकृता अतः तान् सादरं स्तौति धन्यवादञ्च समर्पयति पत्रिकैषा। अन्ये ये केचन् उपकारकाः सन्ति तेषां कृते अपि नमोवाकं प्रशास्ति ।

विद्वच्चरणचञ्चरीकः,

बिपिन्कुमारझा

गुरुपूर्णिमा

बलाहरस्थ-वेदव्यासपरिसरः, हिमाचलप्रदेशः

साहित्यानुरागः

किरातार्जुनीय में हिमालय के पर्यावरणीय अवयव

सुश्री मनीषा कश्यप

विनीत घिल्डियाल

कूटशब्द हिमालय, पर्यावरण, अवयव, अजैविक।

शोधसार

महाकवि भारवि के जीवन का एक मात्र काव्य किरातार्जुनीय संस्कृत के महाकाव्य की बृहत्त्रयी का प्रथम गुच्छ है। महाभारत के वनपर्व पर आश्रित 18 सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य में महर्षि वेदव्यास की प्रेरणा से अर्जुन का हिमालय पर्वत के शिखर इन्द्रकील पर्वत पर जाकर तपस्या करना, किरातवेषधारी भगवान् शिव के साथ अर्जुन का घमासान युद्ध और अर्जुन की कठोर तपस्या एवं पौरुष से प्रसन्न शिव द्वारा अर्जुन को पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति का वर्णन किया गया है। नगाधिराज हिमालय इस सम्पूर्ण कथानक के अभिन्न अङ्ग हैं। हिमालय की भूमि ऊंची-नीची है। जो वस्तुतः भूमि चट्टान, पत्थर और मिट्टी है। यह यत्र-तत्र ऊंची-ऊंची शिलाओं एवं समतल घाट वाली नदियों से शोभायमान है। इस महाकाव्य में पग-पग पर हिमालय के पर्यावरणीय अवयवों से सम्बन्धित सन्दर्भ भी प्राप्त होते हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में हिमालय के इन्हीं अजैविक एवं जैविक अवयवों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है।

==========

अखिलमिदममुष्य गौरीगुरोस्त्रिभुवनमपि नैति मन्ये तुलाम्।

अधिवसति सदा यदेनं जनैरविदितविभवो भवानीपतिः।।

हिमालय न केवल एक पर्वतश्रृङ्खला है अपितु युगों युगों से हमारी सांस्कृतिक प्रेरणा का अत्यन्त समृद्ध उद्गमस्थल रहा है। हमारे ऋषि-मुनियों, मनीषियों आदि ने इसके शान्त एवं पवित्र प्रांगण में आकर अभीष्ट लाभ प्राप्त किया। यही कारण है कि महर्षि वेदव्यास ने अर्जुन को कौरवों पर विजयप्राप्ति हेतु भगवान् शिव को प्रसन्न करने के लिये हिमालय के शिखर पर जाकर तपस्या करने का उपदेश दिया। किरातार्जुनीय में महाकवि भारवि ने इतिहास प्रसिद्ध इस रोचक कथानक को न केवल अपने वर्णन-वैचित्र्य के सफल प्रयोग द्वारा सजीव रूप में प्रस्तुत किया है अपितु हिमालय के जैविक एवम् अजैविक पर्यावरणीय अवयवों पर भी प्रकाश डाला है।

पर्यावरण जीव के चारों ओर विद्यमान सजीव एवं निर्जीव परिवेश है, जिसमें वह निवास करता है, जो प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष रूप से उसे प्रभावित करता है और स्वयम् उससे प्रभावित भी होता है। पर्यावरण के अवयवों को दो भागों में

विभाजित किया गया है- अजैविक अवयव एवं जैविक अवयव। जल, वायु, भूमि, मृदा, खनिज-तत्त्व आदि समस्त भौतिक एवं रासायनिक अवयव अजैविक अवयवों के अन्तर्गत आते हैं। इसी प्रकार वन-वनस्पतियां, पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, सरीसृप, मानव आदि सम्पूर्ण जीव-जगत जैविक अवयवों के अन्तर्गत परिगणित होता है। नीचे किरातार्जुनीय में प्राप्त हिमालय के अजैविक एवं जैविक अवयवों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

हिमालय के अजैविक अवयव

जल स्रष्टा की आदिसृष्टि कहा गया है। हिमालय पर अनेक स्वच्छ एवं पवित्र जलवाली नदियां प्रवाहित होती हैं।[3] ये नदियां जलकमल एवं खस आदि से युक्त होने के कारण दाह को शान्त करने वाले जल को धारण करती है।[4] गजपतियों की जलक्रीडा से इन नदियों का जल कहीं कमल-केसर की गन्ध लिये हुए और कहीं कमल-पराग से पीतवर्ण रहता है- मातङ्गोन्मथितसरोजरेणुपिङ्ग माञ्जिष्टं वसनमिवाम्बु निर्बभासे।[5] हिमालय पर नदी-निर्झरादि के जलकणों से शीतल तथा वन-वनस्पतियों से पावन एवं सुगन्धित वायु वनेचरों के परिश्रम को दूर करता हुआ सदा प्रवाहित होता है।[6] विकसित कमल-परागों से सुगन्धित, छोटी-छोटी जाह्नवी के तरङ्गों से शीतल और मन्द वायु ने मित्र के समान अर्जुन का आलिङ्गन किया तथा तपस्या-काल में ग्रीष्मकाल में भी ऋतु के प्रभाव को तिरस्कृत करके सूर्य के किरण-समूह को सुखकर बना दिया-

अवधूतपङ्कजपरागकणास्तनुजाह्नवीसलिलवीचिभिदः।
परिरेभिरेऽभिमुखमेत्य सुखाः सुहृदः सखायामिव तं मरुतः।।[7]

अनुकूलपातिनमचण्डगतिं किरता सुगन्धिमभितः पवनम्।
अवधीरितार्तवगुणं सुखतां नयता रुचां निचयमंशुमतः।।[8]

---

[3] विविधकामहिता महिताम्भसः स्फुटसरोजवना जवना नदीः।– किरातार्जुनीय, 5.7

[4] .....सकमलं कमलम्।
इह सिन्धवश्च वरणावरणाः करिणां मुदे सनलदानलदाः।।- किरातार्जुनीय, 5.25

[5] किरातार्जुनीय, 7.36

[6] प्रणुदन्ववौ वनसदां परिश्रमम्।– किरातार्जुनीय, 12.50

[7] किरातार्जुनीय, 6.3

[8] किरातार्जुनीय, 6.25

ऊंचे-नीचे पर्वत-शिखरों के अनुसार ही हिमालय की भूमि ऊंची-नीची है।[9] वस्तुतः भूमि चट्टान, पत्थर, और मिट्टी है।[10] हिमालय की भूमि यत्र-तत्र ऊंची-ऊंची शिलाओं[11] एवं समतल घाट वाली नदियों से शोभायमान है।[12] मिट्टी चट्टानों का ही चूरा होती है। जब इसमें वनस्पति सड़कर अर्थात् जीवांश मिल जाता है तो पानी के मिलने से यह उपजाऊ बन जाती है।[13] हिमालय की मृदा उपजाऊ है।[14] भारवि के अनुसार, इस हिमालय के शिखर रत्नराशियों से रहित नहीं हैं, इसकी कन्दराएं लताभवनों से खाली नहीं हैं, इस हिमालय की नदी सिकतामय तट और विकसित कमलों से रहित नहीं हैं, यहां के कोई वृक्ष ऐसे नहीं हैं जो फूले हुए न हों-

रहितरत्नचयान्न शिलोच्चयानपलताभवना न दरीभुवः।

विपुलिनाम्बुरुहा न ससिद्वधूरकुसुमान्दधतं न महीरुहः।।[15]

खनिज-तत्त्वों एवं धातुओं की तो शैलराज खान ही कहा गया है। पौराणिक[16] एवं परवर्ती[17] संस्कृत साहित्य में अनेकत्र हिमालय एवम् इसके पर्वत-शिखरों को स्वर्ण, रजत, लोहा, सीसा, नानाविध मणियों, सिन्दूर एवं गैरिक आदि से मण्डित बताया गया है। किरातार्जुनीय के अनुसार, हिमालय पर कहीं हरी मरकतमणियों की किरणों को कुरङ्गाङ्गनाएं हरे तृणों का अङ्कुर जानकर पहले खा लेती हैं और फिर उगल देती हैं। कहीं सूर्यकिरणों के सम्पर्क से फैलाई गयी मरकतमणि के नील किरणों के सम्पर्क से श्वेत चांदी और स्फटिक मणि की दीवारों की शोभा दिन के मध्य में भी चांदनी की शङ्का उत्पन्न करती हैं तो कहीं स्वर्णमय शिखरों पर पद्मराग मणियों के किरणों के पड़ने से हिमालय सन्ध्याकालिक किरणों की शोभा को धारण करता है-

नीतोच्छ्रायं मुहुरशिशिररश्मेरुस्रैरानीलाभैर्विरचितपरभागा रत्नैः।

---

[9] उत्सङ्गे समविषमे समं महाद्रेः...।–किरातार्जुनीय,7.21

[10] शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता घृता।- अथर्ववेद, 12.1.26

[11] दधतमुच्चशिलान्तरगोपुराः...।- किरातार्जुनीय,5.5

[12] समवतारसमैरसमैस्तटैः।- किरातार्जुनीय, 5.7

[13] उत्तराखण्ड गढ़वाल का जनजीवन, डॉ. शिवप्रसाद नैथानी, अध्याय 2– पृ.67

[14] अध्यूषुश्च्युतकुसुमाचितां सहाया वृत्रारेरविरलशाद्वलां धरित्रीम् ।।- किरातार्जुनीय,7.26

[15] किरातार्जुनीय, 5.10

[16] स्वर्णैरौप्यायसैः शृङ्गैः...।- श्रीमद्भागवत्पुराण,4.25.14

[17] मणिकाञ्चनरूप्यस्य शिलानां च समुच्चयम्।- महाभारत,वनपर्व,158.32; सीसकमेव च ।।- वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड,37.20; मनःशिलाविच्छुरिता...।- कुमारसम्भव,1.55

ज्योत्स्नाशङ्कामिह वितरति हंसश्रेनी मध्येऽप्यह्नः स्फटिकरजतभित्तिच्छाया।।[18]

नवविनिद्रजपाकुसुमत्विषां द्युतिमतां निकरेण महाश्मनाम् ।

विहितसान्ध्यमयूखमिव क्वचिन्निचितकाञ्चनभित्तिषु सानुषु ।।[19]

हिमालय के जैविक अवयव

हिमालयीय भूमि अनेक वन-वनस्पतियों को धारण करती है। किरातार्जुनीय के अनुसार, जिसके प्रत्येक शिखर पर फूली हुई लताओं का समूह और फले हुए विशाल वृक्षों से युक्त निर्जन वन थे ऐसे उस इन्द्रकील पर्वत ने अर्जुन के मन में तपस्या के लिए निवास का उत्साह उत्पन्न किया-

अनुसानु पुष्पितलतावितितिः फलितोरुभूरुहविविक्तवनः।

धृतिमाततान तनयस्य हरेस्तपसेऽधिवस्तुमचलामचलः।।[20]

देवदारु[21], अर्जुन[22], बाण[23], कसैली[24], गुग्गल[25], तमाल[26] आदि वृक्षों से हिमालय की भूमि आच्छादित है। यहां घास वाले मैदानों में मनोहर नयी शोभा सदा बनी रहती है। कमल वन प्रतिदिन नयी हरितिमा को धारण करते हैं। विचित्र फूलों के गुच्छों से भरे वृक्ष की शाखाएं कभी पीली नहीं पडती।[27] वृक्षों की छाल का प्रयोग वस्त्रों के रूप में भी किया जाता था। वनवास की अवधि में पाण्डवों ने वृक्षों की छाल को वस्त्र के रूप में धारण किया था।[28] अनेक प्रज्वलित औषधियों से

---

[18] किरातार्जुनीय, 5.31

[19] किरातार्जुनीय, 5.8

[20] किरातार्जुनीय, 6.18

[21] अवरुग्णतुङ्गसुरदारुतरौ...।– किरातार्जुनीय, 6.5

[22] किरातार्जुनीय, 15.50

[23] किरातार्जुनीय, 15.50

[24] किरातार्जुनीय, 15.50

[25] महिषक्षतागुरुतमालनलदसुरभिः सदागतिः।- किरातार्जुनीय, 12.50

[26] महिषक्षतागुरुतमालनलदसुरभिः सदागतिः।- किरातार्जुनीय, 12.50

[27] रम्या नवद्युतिरपैति न शाद्वलेभ्यः श्यामीभवन्त्यनुदिनं नलिनीवनानि।
अस्मिन्विचित्रकुसुमस्तबकाचितानां शाखाभृतां परिणमन्ति न पल्लवानि।।- किरातार्जुनीय, 5.37

[28] स वल्कवासांसि तवाधुनाहरन्करोतिः...।– किरातार्जुनीय, 1.35

हिमालय पर्वत देदीप्यमान रहता है।[29] कमलिनी-लता[30], विद्रुमलता[31] आदि से सम्बन्धित सन्दर्भ भी प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त हिमालय की भूमि को यत्र-तत्र खस, दूब आदि तृणों से समाकीर्ण दर्शाया गया है।[32] तपस्या के समय अर्जुन प्रत्येक रात्रि में सोने के काम में आने वाली पृथ्वी को कोमल तृणों से आच्छादित कर देता था- तृणता तृणैः प्रतिनिशं मृदभिः शयनीयतामुपयतीं वसुधाम् ।[33]

हिमालय पर्वत कहीं सिंह, व्याघ्र, गज, महिष, वराहादि की गर्जनाओं से गर्जित तो कहीं हंस, सारस, मयूर, कोकिलादि की स्वरलहरियों से गुञ्जायमान है। किरातार्जुनीय के अनुसार, हिमालय पर निवास करने वाले सिंहों ने सेना की ध्वनि से सहसा नींद उचट जाने से जंभाई लेते हुए निःशंक भाव से शङ्करजी के सैनिकों को देखा।[34] हिमालय पर कमलिनियों से व्याप्त जल में मदमस्त गजपतियों का जलक्रीडा करना विख्यात है।[35] यहां के गज सिंहों के भय को भी जीत लेने वाले कहे गए हैं।[36] महिष[37], चमरी गाय[38] आदि अनेकानेक पशु हिमालय के वनों में विचरते रहते हैं। मानसरोवर सभी जाति के हंसों के समूहों का निवास-स्थान बतलाया गया है।[39] हिमालय पर हंस-सारसों के स्पष्ट शब्द सुनायी देते हैं।[40] कुररी नामक पक्षियों का समूह बोलता रहता है।[41] विकसित आम्रमञ्जरी के गन्ध के सदृश मदजल के सेक से उत्पन्न गन्ध को धारण करने वाला सुरगजों के कपोल का घर्षण कोकिलों को असमय में भी उन्मत्त बना देता है।[42] गम्भीर

---

[29] ज्वलयतौषधिजेन कृशामुना।– किरातार्जुनीय, 5.14

[30] किरातार्जुनीय, 12.51

[31] किरातार्जुनीय, 6.13

[32] इह सिन्धवश्च वरणावरणाः करिणां मुदे सनलदानलदाः।- किरातार्जुनीय,5.25

[33] किरातार्जुनीय, 6.26

[34] हरसैनिकाः प्रतिभयेऽपि गजमदसुगन्धिकेसरैः।
स्वस्थमभिदृदृशिरे सहसा प्रतिबोधजृम्भितमुखैर्मृगाधिपैः।।- किरातार्जुनीय, 12.48

[35] प्रश्च्योतन्मदसुरभीणि निम्नगायाः क्रीडन्तो गजपतयः पयांसि कृत्वा।
किञ्जल्कव्यवहिततामदानलेखैरुत्तेरुः सरसिजगन्धिभिः कपोलैः।।- किरातार्जुनीय, 7.35

[36] गभीरमेघघोषैरुन्निद्रक्षुभितमृगाधिपश्रुतानि....।– किरातार्जुनीय, 7.39

[37] किरातार्जुनीय, 12.50

[38] चमरीगणैर्गणबलस्य.....।– किरातार्जुनीय, 12.47

[39] सकलहंसगणं शुचि मानसम्।– किरातार्जुनीय, 5.13

[40] स्फुटहंससारसविरावयुजः।– किरातार्जुनीय, 6.4

[41] कुररीगणः कृतरवः...।– किरातार्जुनीय, 5.25

[42] सादृश्यं गतमपनिद्रचूतगन्धैरामोदं मदजलसेकजं दधानः।

प्रतिध्वनि वाले अर्जुन के रथ के शब्दों को मेघ की ध्वनि की शङ्का से मयूरों के ऊंची गर्दन करके सुनने का उल्लेख है- उद्ग्रीवैर्घनरवशङ्कया मयूरैः सोत्कण्ठं ध्वनिरुपशुश्रुवे रथानाम्।[43]

इसके अतिरिक्त जलीय जीवों, कीटपतङ्ग, सरीसृप आदि से सम्बन्धित सन्दर्भ भी उल्लेखनीय हैं। हिमालय की नदियां मछलियों के समूहों के करवट बदलने से उत्पन्न कीचड़ के कारण दुर्गम तट वाली कही गयी हैं- बिभराम्बभूवुरपवृत्तजठरशफरीकुलाकुलाः।[44] हिमालय के शिखर भ्रमरों की मधुर गुञ्जार से गुञ्जायमान रहते हैं। भ्रमरों की मधुर गुञ्जन को तपस्या हेतु प्रवृत्त अर्जुन के लिए जयध्वनि के रूप में सूचित किया गया है।[45] सुन्दर लताओं और केसर-वृक्षों से प्रेम करने वाले सांपों के समूहों से हिमालय व्याप्त तथा विस्तृत है- फणभृतामभितो विततं ततं दयितरम्यलताबकुलैः कुलैः।[46]

हिमालय एवं इसके शिखरों पर देव, यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध, किन्नर, किरातादि विविध जनजातियां निवास करती है। यही कारण है कि किरातार्जुनीय में हिमालय को जगत के प्रतिनिधि के रूप में दर्शाया गया है-

क्षितिनभःसुरलोकनिवासिभिः कृतनिकेतमदृष्टपरस्परैः।
प्रथयितुं विभुतामभिनिर्मितं प्रतिनिधिं जगतामिव शम्भुना।। [47]

कुबेर को यक्षों का स्वामी कहा जाता है। कुबेर के भृत्य यक्ष ने अर्जुन को बाधा-रहित हिमालय का मार्ग बतलाया।[48] ऋषि-मुनियों की तो यह तपःस्थली है।[49] अनेक सिद्ध एवं तपस्विजन यहां निवास करते हैं।[50] हिमालय पर किरात जाति प्रसिद्ध है। अर्जुन की परीक्षा हेतु भगवान् शिव ने भी अपने गणों सहित किरात-वेष धारण करके हिमालय के शिखर पर पादार्पण किया। किराताधिपति के रूप में भगवान् शिव चन्दन का लेप लगाये, वक्षःस्थल पर गजमुक्ता की माला

एतस्मिन्मदयति कोकिलानकाले लीनालिः सुरकरिणां कपोलकाषः।।- किरातार्जुनीय, 5.26

[43] किरातार्जुनीय, 7.22

[44] किरातार्जुनीय, 12.49

[45] तमनिन्द्यवन्दिन इवेन्द्रसुतं विहितालिनिक्वणजयध्वनयः।– किरातार्जुनीय, 6.2

[46] किरातार्जुनीय, 5.11

[47] किरातार्जुनीय, 5.3

[48] अलकाधिपभृत्यदर्शितं शिवमुर्वीधरवर्त्म सम्प्रयान्।– किरातार्जुनीय, 3.59

[49] तपोभृताम् ।- किरातार्जुनीय, 3.59

[50] सिद्धतापसैः।– किरातार्जुनीय, 12.16

धारण किये हुए थे। उनके केश लम्बे तथा लतादि से बंधे हुए थे। मयूर के पुच्छ से कपोल चिह्नित थे तथा हाथों में धनुष शोभायमान था।[51] शिव के उक्त रूप द्वारा हिमालय पर किरात जाति के सेनापति की वेशभूषादि का ज्ञान भी प्राप्त होता है।

उपर्युक्त समस्त उल्लेखों से यह ज्ञात होता है कि भारवि का किरातार्जुनीय हिमालय एवम् इसके अङ्क में संरक्षित एवं संवर्धित होने वाले पर्यावरणीय अवयवों को नैसर्गिक रूप में चित्रित करता है और साथ ही, हमारे ऋषि-मनीषियों, कवियों आदि की परम्परा को आगे बढ़ाता हुआ हिमालय को समस्त भूमण्डल के शोभायमान धवल मस्तक के रूप में स्थापित करता है।

सन्दर्भग्रन्थसूची

- महाकविभारवि, श्रीबदरीनारायणमिश्र (हिन्दीव्याख्याकार), 2012, ***किरातार्जुनीयम्,*** चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
- डॉ. किरण टण्डन, डॉ. जया तिवारी (सम्पादक), 2003, ***वैदिक सूक्त चयनिका,*** अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, नैनीताल
- डॉ. शिवप्रसाद नैथानी, 2012, ***उत्तराखण्ड गढ़वाल का जनजीवन,*** पवेत्री प्रकाशन, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड।
- पं. रामतेज पाण्डेय (व्याख्याकार), 2009, ***श्रीमद्भागवत्पुराण,*** चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी।
- श्रीमन्महर्षि वेदव्यास, साहित्याचार्य पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम' (अनुवादक), सं. 2065, ***महाभारत,*** गीताप्रेस गोरखपुर।
- पं. रामतेज पाण्डेय (व्याख्याकार), 2009, ***वाल्मीकि रामायण,*** चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी।
- महाकवि कालिदास, श्री पं. पद्युम्न पाण्डेय (व्याख्याकार), 2006, ***कुमारसम्भवम्,*** चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

[51] किरातार्जुनीय,12.40-43

याज्ञवल्क्यस्मृतौ स्तेयप्रकरणे समाजव्यवस्थायाः परिशीलनम्

हीरालालदाशः

कूटशब्दाः याज्ञवल्क्यस्मृतिः, दण्डव्यवस्था, संस्काराः, व्यभिचारः, सुतबान्धवाः।

शोधसारः

धृञ् (धारणे) इत्यनेन धातुना '**सर्वधातुभ्यो मनिन्**'[1] इति पाणिनीयानुशासनेन मनिन् प्रत्यये धर्मशब्दोऽयं समजनि। शंसनात् शास्त्रमित्यत्र शास् धातुना ष्ट्रन् प्रत्यये शास्त्रमिति ज्ञायते। धर्मविषयकं तत्त्वं यच्छास्त्रं प्रतिपादयति तत् धर्मशास्त्रमिति साधारणार्थः। धर्मशास्त्रे मनोः मनुस्मृतिः, याज्ञवल्क्यस्मृतिः, नारदस्मृतिः, वशिष्ठस्मृतिः, पराशरस्मृतिः इत्यादयः ये ये विशिष्टाः स्मृतिग्रन्थाः भवन्ति। तेषु समाजस्य उन्नतये, तथा समाजे अनुभूतानां दोषाणां परिष्करणाय, जनान् सन्मार्गे प्रवर्तनाय च याज्ञवल्क्यस्मृतिः समुचितमार्गदर्शकग्रन्थ इति सडिण्डिममुद्घोषयितुं शक्यते।

वयं पश्यामः सम्प्रति परिवारस्य समाजस्य देशस्य वा परिस्थितिः कथमस्तीति । इदानीं सर्वत्र कलुषितमेव वातावरणं दृश्यते। समाजे सर्वत्र चौर्यम्, बलात्कारः, मिथ्याकथनं, दोषारोपणं, हिंसा,मारणम्, घातः, प्रतिघातादयः जनेषु प्रचलति। तत्सर्वमपि किमर्थम् ? तस्य परिष्कारः किं नास्ति वा ? यः तत्सर्वमाचरति तस्य कृते कथं वा दण्डव्यवस्था भवेत् ? चौरस्य कृते, बलात्कारिणः कृते कथं व्यवहारः कर्तव्यः इत्येते विषयाः याज्ञवल्क्यस्मृतौ तेन मुनिना सोदाहरणपुरस्सरं निरूपितम्। मदीये शोधपत्रेऽस्मिन् याज्ञवल्क्यस्मृतेः व्यवहाराध्याये स्तेयप्रकरणे चौरस्य कृते कथं व्यवहारः, सन्देहे सति कथं, चौरस्य शारीरिकदण्डः, धान्य-सुवर्णादीनां चोरिते कथं दण्डव्यवस्थाः, अन्यस्य शस्यं, गृहं,वाटिकां वा प्रज्वालनेन तथा राजपत्न्या सह व्यभिचारे कथं दण्डव्यवस्थाः भवेदिति विषयाः शोधपत्रेऽस्मिन् निरूपयितुमेव कश्चन प्रयासः विहितः ।

==========

समाजेऽस्मिन् सर्वसमीहीतस्य सुखस्य सम्प्राप्तये अनुक्षणं प्रयतमानो जनः सर्वदा उपायान् मृग्यते। एतदर्थं प्राचीनाः मनीषिणः ऋषयश्च विविधानि लौकिकालौकिकहितकारकाणि तत्त्वेक्षणपराणि च नैकानि शास्त्राणि प्रणिनिन्युः। तेषु महामुनेः याज्ञवल्क्यस्य याज्ञवल्क्यस्मृतिः किमपि विशिष्टं स्थानं भजतेतराम्। धर्मशास्त्रे ये ये स्मृतिग्रन्थाः स्वीयविशिष्टोपदेशनिर्देशने प्रथितास्सन्ति तेषु मनुस्मृतेरनन्तरं याज्ञवल्क्यस्मृतेः स्थानमायाति। तस्मिन् स्मृतिग्रन्थे मानवहितपरकाणि अनेके उपदेशाः निर्दिष्टाः सन्ति। तेषां विशेषाध्ययनेन नियमानां परिपालनेन च मानवानां सततं हितमवश्यमेव भविष्यतीति नास्ति विप्रतिपत्तिः। याज्ञवल्क्यस्मृतेः चौरकृते कथं व्यवहारः, सन्देहे सति कथं चौरनिमित्तं शारीरिकदण्डः भवेदिति विषये वर्णनं

प्राप्यते। एतद्वर्णनं स्तेयप्रकरणे विशेषरूप् परिदृश्यते। स्तेन इति शब्दात् " स्तेनाद्यन्नलोपश्च" [2] इति पाणिनीयानुशासनेन यत् प्रत्यये कृते नकारस्य लोपे च स्तेय इति शब्दस्य निष्पत्तिर्जायते। "स्तेन चौर्चे" इत्यनेन स्तेनस्य भावः कर्म वा स्तेयम्। इत्यनेन चौर्यवृत्तिः इत्येवार्थः। प्रायश्चित्तविवेके उक्तं यथा तस्य लक्षणम्—

प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा रात्रौ वा यदि वा दिवा ।

यत् परद्रव्यहरणं स्तेयं तत्परिकीर्तितम्।। [3]

समाजस्योन्नतये व्यवहाराध्याये चौराणां दण्डव्यवस्था

आधुनिकसमाजेऽस्मिन् चौरोऽपि समाजस्य एकं पात्रम्। स्वेच्छया अनिच्छया वा भवतु सः स्तेनकर्म समाजे विदधाति। परन्तु सोऽपि जानाति यत् कर्ममिदं मम कृते नैवोचितम्। परन्तु भारतीयसम्बिधाने तदर्थमपि दण्डव्यवस्था परिकल्पिता वर्तते। चौरस्य कृते कथं दण्डव्यवस्था भवेदिति विषये याज्ञवल्क्यस्मृतेः व्यवहाराध्याये स्तेयप्रकरणे सन्ति केचन नियमाः। तदस्माभिः अवश्यमेव ज्ञातव्याः ।

यदि चौर्यशङ्कया कश्चन राजाधिकारिभिः गृहीतः तथा स्वनिर्दोषस्य (मया चौर्यं न कृतम् इति) प्रमाणं दातुमसमर्थस्तर्हि चौर्यवस्तुनि स्वामिनः कृते दापयित्वा स च चौरः यथानुकूलं दण्ड्येत्। येन इतः परं सः चौर्यवृत्तिं नैव आचरिष्यति। तथाहि—

गृहीतः शङ्कया चौर्ये नात्मानं चेद्विशोधयेत्।

दापयित्वा हृतं द्रव्यं चौरदण्डेन दण्डयेत् ।।

चौरं प्रदाव्यापहृतं घातयेद्विविधैर्वधैः।

सचिह्नं ब्राह्मणं कृत्वा स्वराष्ट्राद्विप्रवासयेत्।। [4]

अत्र निरूपितं यत् चौर्यं वस्तु दापयित्वा शारीरिकदण्डेन चौरः दण्डनीयः। यदि चौरः ब्राह्मणोऽस्ति तर्हि तस्य ललाटस्योपरि शुनकस्य पदचिह्नं विधाय राज्यात् बहिः प्रेषणीयम्।

यदि ग्राममध्ये मनुष्यादीनां प्राणिवधः , धनापहरणं वा जायते तदा ग्रामपतेरेव चौरोपेक्षादोषः भवति। तत्परिहारार्थं स एव चौरं गृहीत्वा राज्ञेऽर्पयेत्। तदशक्तौ हृतं धनं धनिने दद्यात् यदि चौरस्य पदं स्वग्रामान्निर्गतं न दर्शयति। विवीते (धर्मशाला, एकस्मिन् कोणभागे वा) यदि वधः चौर्यं वा भवति अथवा कुत्रापि मार्गे भवति मार्गपालस्य दिक्पालस्य वा दोषो जायते। यदि स्वग्रामस्य सीम्नि (सीमामध्ये) चौर्यं भवति तदा ग्रामवासिनः चौरस्य कृते दण्डं दद्यात्। यस्मिन् ग्रामे

चौरगमनस्य सङ्केतो (पदचिह्नादयः) भवति तस्य ग्रामस्य जनाः तं दण्डयेयुः। यदि अनेकग्राममध्ये क्रोशमात्राद् बहिः प्रदेशे जातं तदा पञ्च दश वा ग्रामजनैः मिलित्वा तं दण्डं दद्यात्। तथाहि—

घातितेऽपहृते दोषो ग्रामभर्तुरनिर्गते।

विवीतभर्तुस्तु पथि चौरोद्धर्तुरवीतके।।

स्वसीम्नि दद्यात् ग्रामस्तु पदं वा यत्र गच्छति।

पञ्चग्रामी बहिः क्रोशाद्दश्ग्राम्यथवा पुनः।। [5]

सः जनः बलात्-बन्दीजनात् बहिरानेतुं प्रयत्नं करोति। तथा अश्वगजादीनामपहरणं कृत्वा तान् मारयति। तेभ्यः जनेभ्यः शूले आरोपणं कर्तव्यम्। उक्तं यथा व्यवहाराध्याये स्तेयप्रकरणे—

बन्दिग्राहास्तथा वाजिकुञ्जराणां च हारिणः।

प्रसह्यघातिनश्चैव शूलानारोपयेन्नरान्।। [6]

किञ्च वस्त्रादीनां चौर्यं यः विदधाति, ग्रन्थिभेदकात् धनं, सुवर्णं रजतमादीन् स्वीकरोति तस्य अङ्गुलीयकं च्छेदनं कर्तव्यम्। तथापि यदि सः पुनः चोरयति तर्हि तस्य हस्तमेकं पादमेकञ्च कर्तनं कर्तव्यम्। येन सः चौर्यप्रवृत्तिं पुनः नैव आचरेत्। उक्तं हि व्यवहाराध्याये स्तेयप्रकरणे—

बन्दिग्राहास्तथा वाजिकुञ्जराणां च हारिणः।

प्रसह्यघातिनश्चैव शूलानारोपयेन्नरान्।। [7]

याज्ञवल्क्यस्मृतौ व्यवहाराध्याये स्तेयप्रकरणे अचौरस्यापि चौरोपकारिणः दण्डविषये निरूपितं वर्तते। यः पुरुषः चौरस्य दुष्टत्वं जानन्नपि तस्य कृते साहाय्यं करोति।अर्थात्- भोजनम्, अग्निं, जलं ददाति चौर्यं कर्तुं परामृशति। मारयितुं योऽयं साधनं ददाति। मार्गव्ययमादीन् दत्वा तं चौरं प्रेरयति तस्य कृते उत्तमसाहसस्य दण्डविधानं भवेत्। तथाहि—

भक्तावकाशाग्न्युदकमन्त्रोपकरणव्ययान्।

दत्वा चौरस्य वा हन्तुर्जानतो दम उत्तम।। [8]

यदि कश्चन जनः समाजे कस्यापि शरीरं शस्त्रेण हन्ति तथा कोऽपि स्वपत्न्याः गर्भपातं करोति तस्य कृते उत्तमसाहसस्य दण्डं भवेत्। पुरुषस्त्रियोः परस्परं ताडनेन तस्य गुणशीलवृत्तानुसारं च उत्तमम् अथवा प्रथमसाहसं दण्डयेत्। तथाहि—

शस्त्रावपाते गर्भस्य पातेन चोत्तमो दमः।

उत्तमो वाऽधमो वापि पुरुषस्त्रीप्रमापणे।। [9]

व्यवहाराध्याये स्त्रीणामुपरि पापकर्म आचरिते दण्डव्यवस्थाविषयेऽपि कानिचन तथ्यानि निरूपितानि सन्ति। यदि कापि स्त्री विशेषेण प्रदुष्टा , अर्थात् – स्वगर्भपातिनी, पुरुषस्य हन्त्री, सेतूनां भेत्त्री च भवति तस्याः स्त्रियः कृते स्वगलप्रदेशे शिलां बध्वा अप्सु प्रवेशयेत्। उक्तं यथा—

विप्रदुष्टां स्त्रियं चैव पुरुषघ्नीमगर्भिणीम्।

सेतुभेदकरीं चाप्सु शिलां बध्वा प्रवेशयेत्।। [10]

या स्त्री अन्यान् मारयितुं अन्नादिषु विषं ददाति, ग्राम-गृहेषु अग्निसंयोगं करोति, स्वपत्युः गुरोः पुत्रस्य वा वधाय यत्नशीला कापि स्त्री, यदि सा गर्भिणी न भवति तर्हि तस्याः स्त्रियः कर्ण-हस्त-नासिका-ओष्ठादीन् कर्तनं विधाय गोभिः मारयेदिति नियमः। उक्तं यथा—

अविज्ञातहतस्य अविज्ञातपुरुषेण घातितस्य सम्बन्धिनः सुताः, प्रत्यासन्नबान्धवाश्च "केनास्य कलहो जातः" इति कलहमाशु प्रष्टव्याः। तथा मृतस्य सम्बन्धिन्यो योषितो याश्च परपुंसि रताः व्यभिचारिण्यस्ता अपि प्रष्टव्याः। प्रसङ्गेऽस्मिन् उक्तं यथा—

अविज्ञातहतस्याशुः कलहं सुतबान्धवाः।

प्रष्टव्याः योषितश्चास्य परपुंसि रताः पृथक्।। [11]

व्यभिचारिस्त्रीणां कृते कथं वा प्रष्टव्या इत्यस्मिन् विषये याज्ञवल्क्यस्मृतौ व्यवहाराध्याये स्तेयप्रकरणे उक्तं यत् – " किमयं स्त्रीकामो दूव्यकामो वृत्तिकामो वा ? तथा कस्यां किं सम्बन्धित्यां वा स्त्रियामस्य रतिरासीत् ? कस्मिन् वा द्रव्ये प्रीतिः ? कुतो वा वृत्तिकामाः ? केन वा सह देशान्तरं गतः ? इति नानाप्रकारं व्यभिचारिणो योषितः पृथक्पृथक् विश्वास्य प्रष्टव्याः। तथा मरणदेशनिकटवर्तिनो गोपाऽटविकाद्या ये जनास्तेऽपि विश्वासपूर्वकं प्रष्टव्याः। एवं नानाकारैः प्रश्नैः हन्तारं निश्चत्य तदुचितो दण्डो विधातव्यः। तथाहि—

स्त्रीद्रव्यवृत्तिकामो वा केन वाऽयं गतः सह ।

मृत्युदेशसमासन्नं पृच्छेद्वापि जनं शनैः।। [12]

यदि अपरस्य कस्यचन जनस्य शस्यक्षेत्रे, गृहे, ग्रामे, उद्याने, वा अग्निना दाहनं कर्तुं प्रयासं विधीयते। अपि च राजपत्न्या सह दुर्व्यवहारं कुर्वन्ति , तेषां जनानां शरीरेषु पुष्पादीनां वेष्टयित्वा दहनं कुर्यादिति नियमः व्यवहाराध्याये स्तेयप्रकरणे । उक्तं यथा—

क्षेत्रवेश्मवनग्रामविवीतखलदायकाः।

राजपल्यभिगामी च दग्धव्यास्तु कटाग्निना।। [13]

एवञ्च याज्ञवल्क्यस्मृतौ व्यवहाराध्याये स्तेयप्रकरणे कस्य कस्य दोषस्य कृते कथं वा दण्डव्यवस्था भवेदिति विषये नैकानि तथ्यानि महत्त्वपूर्णानि संवलितानि परिलक्ष्यन्ते। तद्विषये अवश्यमस्माकं ज्ञानमपेक्ष्यते।

उपसंहारः

समाजे इदानीं बहुत्र कुसंस्काराः प्रचलन्ति। जनाः प्रायः सर्वेऽपि पथभ्रष्टाः सञ्जाताः। तेषां मार्गदर्शकग्रन्थरूपेण धर्मशास्त्रीयग्रन्थेषु याज्ञवल्क्यस्मृतिः विद्योततेमाम्। तत्र समाजे प्रचलितापराधस्य कृते कथं वा दण्डव्यवस्था भवेदिति विषये सुचर्चिताः सन्ति केचन विषयाः। तेषां ज्ञानेन परिपालनेन वा समाजस्य उन्नतिस्तु अवश्यं सम्भाव्यत इति मे मतिः।

शब्दसंकेताः

1. शब्दक- शब्दकल्पद्रुमः
2. पा.सू – पाणिनीयसूत्रम्
3. सि.कौ – सिद्धान्तकौमुदी
4. पृ – पृष्ठम्
5. व्यव. – व्यवहाराध्यायः
6. स्तेयप्र – स्तेयप्रकरणम्
7. श्लो – श्लोकः

सन्दर्भाः

1. ऊणादिसूत्रम् - 584
2. पा. सू. 5.1.125 / सि. कौ. 1790
3. शब्दक. पञ्चमो काण्डः, पृ-438
4. व्यव. स्तेयप्र. श्लो-269-270
5. स्तेयप्र. श्लो.271-272
6. स्तेयप्र. 273
7. स्तेयप्र. 273
8. स्तेयप्र. 276

9. स्तेयप्र.277
10. स्तेयप्र. श्लो. 278
11. स्तेयप्र. श्लो.280
12. .स्तेयप्र. श्लो. 281
13. .स्तेयप्र. श्लो. 282

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, श्रीमद्भट्टीजिदीक्षितः(सम्पा.-श्रीगोपालदत्तपाण्डेयः, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2004
2. याज्ञवल्क्यस्मृतिः.याज्ञवल्क्यः.(सम्पा.-डा.केशव किशोर काश्यप चौखम्बा कृष्णदास अकादमी,वाराणसी, 2011
3. शब्दकल्पद्रुमः.राधाकान्त देव बाहादुर,ओरिएंटल् बुक् सेन्टर ,दिल्ली, 2002

अष्टादशशताब्द्यां काश्मीरशैवदर्शनम्

नरेन्द्रभारती

कूटशब्दाः परम्पराया, प्रत्यभिज्ञाकारिकाया, भास्करी, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनीटीका

शोधसारः

भारतीयदर्शनाध्ययनकाले अनुभूयते यद् भारतीयसंस्कृतेर्धर्मस्य दर्शनस्य च क्षेत्रेष्वागमिकपरम्पराया महत्त्वपूर्ण योगदानमभवदिति। अनया परम्परया जीवनस्य तेषां तथ्यानामन्वेषणं कृतं यानि मानवजीवनस्य कल्याणाय अनिवार्याणि भवन्ति। अद्यापि तथैव सन्ति, भविष्यत्कालेऽपि तथैव स्थास्यन्ति। जीवनं प्रति विश्वं प्रति च भावात्मकं दृष्टिकोणं विदधतीयं परम्परां स्वस्थं जीवनदर्शनं प्रददाति। अस्याः परम्परायाः प्रमुखं परिचायकमस्ति काश्मीरशैवदर्शनम्। यतो हि चिरकालादविरतं प्रवर्तमानाया भातरीयचिन्तनधारायाः इयमेव चरमा परिणतिः। सामान्यतः काश्मीरशैवदर्शनस्य प्राचीनाचार्याः बहुत्र चर्चिताः विमर्शिताश्च परमस्याः परम्परायाः अर्वाचीनाचार्याणां विषये अपूर्णसूचना एव लभ्यन्ते।

==========

अष्टादशशताब्द्याः शैवाचार्याः –

अष्टादशशताब्द्यां भास्करकण्ठः, शिवोपाध्यायश्च शैवाचार्या उपलभ्यन्ते। तेषु भास्करकण्ठस्य ग्रन्थाः –

1. भास्करी
2. चित्तानुबोधशास्त्रम्
3. मोक्षोपायटीका
4. लल्लेश्वरीवाक्
5. हर्षेश्वरस्तवः

शिवोपाध्यायस्य ग्रन्थाः –

1. विज्ञानभैरवोद्द्योतः
2. श्रीविद्यानिर्णयः
3. शिवरात्रिनिर्णयः

इदानीमनयोः व्यक्तित्वं कृतित्वं च परिशील्यते।

राजानको भास्करकण्ठः –

काश्मीरशैववाङ्मयस्य विपुलमागारं यैः स्वरचनाभिरापूरितं तेष्वन्यतमोऽयं विद्वद्वरेण्यः। भारतीयान्यरचनाकाराणामिवास्यापि रचनासु स्वीयस्थितिकालविषये न किमप्युपलभ्यते। ''काश्मीरेतिहासः'' नामके ग्रन्थे दृश्यते यदयं भास्करकण्ठः ख्रिस्तीयाष्टादशशतकमध्ये वोत्तरार्द्धेऽभवदिति।[1] प्रस्तुतस्य चित्तानुबोधशास्त्रस्यान्तेऽन्यासु स्वरचनासु च स्ववंशविवरणमनेनावश्यं प्रदर्शितम्।[2] तदनुसारमयं श्रीमन्माधवकण्ठस्य प्रपौत्रः, श्रीवैडूर्यकण्ठस्य पौत्रः, श्रीमदवतारकण्ठस्य पुत्र आसीत्। स्वपितामहशिष्याच्छ्रीमद्रत्नकण्ठादनेन विद्याऽधीता श्रीमन्नरोत्तमकौलतश्च दीक्षा गृहीता, अस्यैकः पुत्रोऽपि श्रीजगन्नाथकण्ठनामाऽभवदित्यपि काश्मीरेतिहासग्रन्थात् ज्ञायते। काश्मीरीयविद्वत्सु कण्ठपदान्तविदुषां दीर्घा परम्परा दृश्यते, श्रीमद्रामकण्ठ–विद्याकण्ठ–शितिकण्ठ–श्रीकण्ठप्रभृतीनां बहुश्रुताचार्याणां कृतयः समुपलब्धाः सन्ति। संभवतोऽस्यामेव–परम्परायामेतेऽपि माधवकण्ठादयः स्युः। यद्यप्येतेषां न कापि रचनाऽद्यावधि दृष्टिपथमुपगता तथाप्येतेषां प्रकाण्डविद्वत्त्वं सिद्धत्वं च रत्नकण्ठ–नरोत्तमकौलसदृशाणां शिष्याणामस्तिवेनैवानुमातुं शक्यते।

इदमत्र विशेषेणावधातव्यं यत् काश्मीरशैवदर्शनमेवैतादृशं दर्शनं यत्र व्यक्तेः गर्भाधानादारभ्य विवाहपर्यन्तं सर्वेऽपि संस्कारा विशुद्धवैदिकरीत्या सम्पाद्यन्ते, किन्तु मोक्षेप्सया सर्वोऽपि साधकः सद्गुरोर्दीक्षामवाप्य कौल–त्रिकादिषु कमप्येकमागमिकमार्गं गृहीत्वा परमशिवस्य कामपि शक्तिमुपास्य सिद्धिं लभते। अस्मिन् सिद्धान्तपक्षो यावान् प्रबलः साधनापक्षोऽपि तावानेवावश्यंकर्त्तव्य इति सुनिश्चितं वर्तते, अतः प्रायशः काश्मीरशैवाः विद्वांसः सिद्धाश्च भवन्ति, तात्पर्यमेतत् यत् नरोत्तमकौल–रत्नकण्ठसदृशा भास्करकण्ठगुरवो येषां शिष्या आसन्, तेषां वैडूर्यकण्ठादीनां विद्वत्त्वे सिद्धत्वे च । (क) **श्री अवतारकण्ठस्य त्रयतः सिद्धिमीयुषः।**

कृतं भास्करकण्ठेन पारम्पर्योपदेशतः।।

पित्रादेरागता तद्वद् श्रीमत्कौलनरोत्तमात्।
प्राप्तविद्येव स्वस्यैव मन्त्रोपदेशतः स्फुटम्।।
पितामहस्य सच्छिष्यात् प्राप्तविद्यात्तथैव च।
समस्तविद्यानिपुणाद् रत्नकण्ठाद् दयानिधेः।।[1]

(ख) अवतारकण्ठपुत्रः पौत्रो वैडूर्यकण्ठपादानाम्।
भास्करकण्ठो रचयति विद्वत्कण्ठे विभूषणं व्याख्याम्।।[2]

(ग) इति श्री काश्मीरमण्डलान्तर्वर्त्याराध्यतमपाद– महामाहेश्वरवैडूर्यकण्ठात्मजावता. रकण्ठपुत्रश्रीभारस्करकण्ठविरचितायां श्रीमोक्षोपायटीकायां मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणं समाप्तम्।[3]

(घ) इति श्रीकाश्मीरमण्डलान्तर्गत–आराध्यतमपाद–श्रीवैडूर्यकण्ठात्मजावतार–कण्ठपुत्र–श्रीभास्करकण्ठ.विरचितायां श्रीप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनीटीकायां भास्कर्याख्यायां ज्ञानाधिकारेऽष्टममाह्निकम्।[4]

भास्करकण्ठस्य वैदुष्यम् –

अयमद्भुतप्रतिभाशाली विद्वानभवत्। रचनायां गद्ये पद्ये चास्य समानोऽधिकारः, प्रभावशालिन्योऽस्य व्याख्याः भवन्ति। यं सिद्धान्तमयं प्रतिपादयति तं प्राचीनागमानामाचार्याणां च मतेन सुपुष्टं पोषयति। काश्मीरशैवसिद्धान्तप्रतिपादकानामाचार्याणां सोमानन्दोत्पलाभिनवगुप्तादीनां नामानि सर्वत्र ससम्मानं गृह्णाति, यत्रकुत्रापि तत्सिद्धान्तविरोधं च शालीनतया प्रकटीकरोति, मोक्षोपायटीका,

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनीटीका भास्करी च यथाऽस्य प्रकाण्डं वैदुष्यं द्योतयतः तथैव चित्तानुबोधशास्त्रेणास्य सिद्धत्वमपि द्योत्यते। यत्रानेन शैवसाधनायाः सर्वे पक्षाः सम्यगालोच्य समुद्धृताः।

यद्यपि कैश्चिदयमत्युदारवादी, अद्वैतवेदान्तेन, प्रभावित इत्याद्युक्त्वाऽऽक्षिप्तः किन्तु मतमेतदाक्षेपकाणामेव स,ीर्णतामल्पज्ञतां च सूचयति। एवं विधा आक्षेपा विश्रुते विदुषि शिवोपाध्याये, प्रसिद्धसिद्धे साहिबकौलेऽपि तैः क्रियन्ते किन्तु वस्तुस्थितिस्त्वेतद्विपरीतमैव, प्रस्तुतेन चित्तानुबोधशास्त्रेण सर्वं सुस्पष्टं भवति।

अस्य विषयप्रतिपादनशैली पुराणप्रकारैव। अयमेकमेव विषयं खण्डशः कृत्वा स्थाने–स्थानेऽनेकरूपेण प्रतिपादयति। भाषा सरला प्रवाहमयी चास्य वर्तते येन गहनमपि विषयं जनः सारल्येनावबोद्धुं प्रभवति। अस्य ग्रन्थेषु म„लाचरणानि प्रायशो दीर्घाणि दृश्यन्ते, मोक्षोपायस्य वैराग्यप्रकरणे त्रयोदशश्लोकात्मकं म„लमनेन कृतमस्ति। अस्य ग्रन्थेषु 'प्रतिभा' पदस्य 'अनुबोध' पदस्य च बहुधा प्रयोगो दृश्यते। प्रतिभापदं वाग्देवतार्थे अनुबोधपदं च प्रत्यभिज्ञार्थे। अस्यापि चित्तानुबोधशास्त्रस्य प्रत्येकप्रकरणप्रारम्भेऽनेन "प्रतिभादेव्यै नमः" इति तस्यै नमस्कृतम्। अनुबोधविषये च मोक्षोपायटीकायां वैराग्य प्रकरणस्य प्रथमपत्रेऽनेन रचितं पद्यमेतत् स्मरणीयं वर्तते–

बोधाबोधविबोधभासनपरं बोधान्वितैर्बोधितम्।
बोधाबोधविहीनमूर्तिममलं बोधैकसारं विभुम्।
बोधाबोधविभेदगोपनकरं स्वस्मिंस्तु तस्याप्यनु–
बोधं तं शरणं श्रयामि सततं सद्बोधसम्प्राप्तये।।

रचनाः – अनेन विरचिता एते ग्रन्थाऽद्यावधि दृष्टिपथमुपगताः–

मोक्षोपायटीका –

सम्भवत इयमस्य विदुषः प्रथमा कृतिः, संस्कृतवाङ्मये प्रथिततमो ग्रन्थो योगवासिष्ठाभिधः काश्मीरिकैर्मोक्षोपायनाम्नाऽऽख्यायते, अस्य सम्पूर्णग्रन्थस्य टीकाऽनेनाचार्येण कृता। या चास्यैव शर्ब्देज्ञायते दशसहस्रोत्तरैकलक्षश्लोकात्मिका वर्तते।[1] यथाचोक्तमनेन भास्करीटीका प्रारभता–

"भास्करकण्ठोऽहं दशसहस्रोत्तरलक्षसंख्याकश्रीमोक्षोपायटीकाकरणेन कृतावगाहनस्कन्धसंवाहनः स्वपितुः परम्परागतमुपदेशं श्रुत्वा श्रीकौलनरोत्तमेभ्यश्च विद्योपदेशमासाद्य तद्व्याख्यायां प्रवृत्ता।"

अद्यावधि अप्रकाशितस्यास्य ग्रन्थस्य कश्चनांशः काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य केन्द्रीयग्रन्थालये विद्यते। यस्मिन् वैराग्यप्रकरणस्य 1–32 सर्गाः शारदालिप्यां, उत्पत्तिप्रकरणस्य प्रथमः सर्गः मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणयोः 6–20 सर्गाः तथा वैराग्यप्रकरणस्य 1–32 सर्गाश्च देवनागरीलिप्यां वर्तन्ते।

भास्करी –

आचार्येणोत्पलदेवेन स्वरचितायाः प्रत्यभिज्ञाकारिकाया 'लघुप्रत्यभिज्ञावृतिः' मध्यप्रत्यभिज्ञावृत्तिश्चेति द्वे वृत्ती लिखिते। तदुपरि महामाहेश्वरेणाभिनवगुप्तेन 'बृहत्प्रत्यभिज्ञा' नाम्नी टीका विरचिता, इयं टीका कठिनेति मत्वा तेनैव 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी'त्याख्या विस्तृता व्याख्या विहिता। विषयस्यातिगभीरत्वमाचार्यवाचां च दुरूहग्रन्थिमत्वमभिलक्ष्य आचार्यभास्करकण्ठेन तदुपरि 'भास्करी' व्याख्या विरचिता।[2] अयं ग्रन्थः भागत्रयात्मक आंग्लानुवादसहितः स्व० को० अ० सुब्रह्मण्य अय्यर–डा० कान्तिचन्द्रपाण्डेयाभ्यां सम्पादितः प्रिंस ऑफ वेल्स सरस्वतीभवनस्टडीज् वाराणसीतो 1939 खीस्ताब्दे प्रकाशितः। सम्प्रति मोतीलालबनारसीदासेत्याख्य प्रकाशनसंस्थानादस्य पुनर्मुद्रणं जातम्।

लल्लेश्वरीवाक् –

लल्लेश्वरी काश्मीरदेशेऽतिप्रसिद्धा सिद्धाऽभवत्। तस्योपदेशाः प्राचीनकाश्मीरकभाषायामुपनिबद्धाः सन्ति। आचार्यभास्करकण्ठेन ते संस्कृतभाषायां रूपान्तरिताः। ते च श्री जयालालकौलेन 'लल्लद्यदः' नाम्ना प्रकाशिताः सन्ति।[3]

हर्षेश्वरस्तवः –

अस्योल्लेखः 'काश्मीरेतिहासः' ग्रन्थे दृश्यते।

चित्तानुबोधशास्त्रम् – आचार्यस्यायमति महत्वपूर्णो ग्रन्थः। अत्र काश्मीरशैवविषयकाः प्रायः सर्वे पक्षा आचार्येण सम्यङ्निरूपिता आलोचिताश्च। साधनासम्बन्धीनां केषांचित् उच्चार–प्राणापानचार, पुर्यष्टकादिशब्दानां परिभाषाऽनेन कृता दर्शनीया वर्तते।4

शिवोपाध्यायः –

विज्ञानभैरवोद्द्योतस्य निर्माता, कश्मीरेषु शैवशास्त्रग्रन्थनिर्मातृणां मध्ये चरमः आचार्यः पट्ठानराज्ये सुखजीवननाम्नः प्रशासकस्य राज्यकाले (1754–1762 ई०) विज्ञानभैरवोद्द्योतं विरचितवान्। यथा –

"सुखजीवनाभिधाने रक्षति कश्मीरमण्डलं नृपतौ।"
अगमन्निःशेषत्वं विज्ञानोद्द्योतसंग्रहः।।[5]

शिवोपाध्यायोऽयं शारवेदान्तं प्रति भक्तिवान् शैवाचार्यः। अस्य वंशजा अद्यापि श्रीनगर्यां पुरुषारस्थले निवसन्ति। अस्यैव वंशजानां सकाशे रत्नकण्ठहस्तलिखिता राजतरङ्गिणीपाण्डुलिपिरभूद् यस्या प्रतिलिपिं भुल्लराख्योऽधिकारी प्राप्तवान्। स्टैनमहोदयेन तद्वंशजेभ्यः त्रिभ्यो जनेभ्यः सकाशात् खण्डत्रयं तस्याः प्राप्तं प्रतिलिपिलेखनार्थम्। प्रथमः खण्डस्तस्येदानीमपि कश्मीरशोधसंस्थानपुस्तकसंग्रहालये वर्तते।

राजानकशरकण्ठहस्तलिखितेश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिन्यापि शिवोपाध्यायवंशजस्यानन्दपण्डितस्य गृहेऽभूत्। साऽपीदानीं कश्मीरशोधपुस्तकालयमातृकासङ्ग्रहालये विद्यते। सुन्दरकण्ठोऽस्य गुरुः। तदुक्तम्। यथा –''कृतिः श्रीमद्गोविन्दगुरुसुन्दरकण्ठपादपद्मानुजीविनः शिवोपाध्यायस्य।''

अस्यान्ये ग्रन्थाः –

श्रीविद्या निर्णयः, बहुरूपगर्भस्तवटीका, गायत्रीनिर्णयः, इति। एतेन निर्मितं स्ववंशवर्णाख्यं काव्यं न क्वापि लभ्यत इदानीम्। एतस्य विषये 'वितस्ता' इति पत्रिकायाः वार्षिकी, 1968 तमे वर्षे श्रीप्रेमनाथबजाज महोदयेनोक्तमस्ति यत् – अयं शिवोपाध्यायः काश्मीरशैवागमस्य आचार्यपरम्परायामन्तिमः, यः 1775 तमे वर्षे विज्ञानभैरवस्योपरि टीकां लिखितवान् – ''The Last of the Kashmiris to bend his mental faculty in this direction was Shivopadhyay, who wrote a commentary on Vijnana-Bhairava in 1775 A.C. ''

शिवोपाध्यायस्य प्रतिपादनशैली पातंजलशैल्याः वैदान्तिकान्तिकशैल्याश्च भूयांसं संकरं धारयन्ती नैव शुद्धा कश्मीरशैवदर्शनशैली। कश्मीरशैवसिद्धान्तानसौ पातंजलशारादिकृताः परिभाषा आदाय व्याख्यायति। शैववैदान्तिकद्वैतैकीकरणप्रयत्नपरोऽसौ। इति तत्कृतैः शब्दप्रयोगैः न भ्रमितव्यम्। वैदान्तिके अद्वैते मायां परब्रह्मशक्तित्वेन प्रतिष्ठाप्य तेन स्वकृतायां श्रीविद्यायां द्वयोरद्वैतयोः समन्वयोऽपि प्रतिपादित एव परमसौ श्रीविद्या न प्रकाशमुपनीता केनापि। अमुद्रितैव पाण्डुलिपिभाण्डारे विद्यते श्री नगरीयविश्वविद्यालयपुस्तकागारे।।

सन्दर्भ–

1. चित्तानुबोधशास्त्रम् 15/294–298
2. मोक्षोपायटीका उत्पत्तिः प्र० (पाण्डुलिपिः) पत्रम् 1
3. मोक्षोपायटीका , (पाण्डुलिपिः) पत्रम् 49
4. भास्करी, पृष्ठ 425
5 विज्ञानभैरवोद्द्योतः, पृष्ठम् 144

सन्दर्भग्रन्थसूची

1 ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिन, अभिनवगुप्त, काश्मीर ग्रन्थावली, श्रीनगर, 1921

2. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाी विवृतिविमर्शिनी, अभिनवगुप्त, काश्मीर ग्रन्थावली, श्रीनगर, 1938

3. काश्मीरशैवदर्शन बृहत्कोषः खण्ड –1, 2, बलजिन्नाथ पण्डित, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान श्री रणवीर परिसर, जम्मू

4. काश्मीरशैवदर्शन, बलजिन्नाथ पण्डित, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान श्री रणवीर परिसर, जम्मू

5. चित्तानुबोधशास्त्रम्, डॉ० सुषमा पाण्डेय , तारा बुक एजेन्सी, बनारस, 1991

6. भास्करी, भास्करकण्ठ, सरस्वती भवन टेक्स्ट नं० 70, 86, लखनऊ

धर्मशास्त्रोक्तानां संस्काराणां प्रासङ्गिकता

एम्. गजलक्ष्मी

कूटशब्दाः संस्पर्शः, संस्कारः, यागदानादयः, कर्तव्यम्, धर्मः

शोधसारः

चतुर्षु पुरुषार्थेषु धर्मः अन्यतमः। येन अर्थस्य सम्पादनं तेन कामस्य सम्पादनं यदि करोति तदा सः मुक्तो भवति। धर्ममोक्षस्य प्रथमसोपानं धर्म एव। अतः बादरायणेनोक्तम् – ऊर्ध्वबाहुः विशैत्येषः न च कश्चित् शृणोति माम्,धर्मादर्थकामश्च स धर्मः किं न सेव्यते॥ धर्मशब्दः विहितकर्मणि तत्फले च रुढः वर्तते। तथा च श्रुयते –अहिंसा परमो धर्मः, आनृशंस्यं परो धर्मः,सत्यं वद, धर्मं चर, स्वधर्मे निधनं श्रेयः। इत्यादि वाक्यं प्रजा यं धारयति येन च समस्तप्रजायाः धारणं क्रियते तदेव धर्मः। धर्मशास्त्रम् – धर्मः धर्मशास्त्रे प्रामुखं भजते। अतः धर्मशास्त्रस्य प्रशंसाप्रसङ्गे श्रुतिः प्रतिपादयति।

धर्मोविश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा,धर्मेन प्रजाः उपसर्पयन्ति।

धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्,तस्मात् धर्मं परमं वदन्ति।

एतावता धर्मशास्त्रस्य प्रशंसा श्रुत्या विहिता। एतादृश महिमपुरस्कृते धर्मशास्त्रे संस्काराणाम् अवश्य कर्तव्यम् उपपादितमस्ति। तेषां संस्काराणां प्रयोजनं न केवलम् आध्यात्मिकम् अपितु अद्यत्वेनैतिकशारीरानुकुलयोग्यमपि वर्तत इति प्रकृतलेखस्य उद्येश्यमस्ति। विज्ञानयुगे सम्प्रति अपि संस्काराणाम् अवश्योपादेयत्वं कथं वर्तत इति किंचित् विवरिष्यते प्रकृतलेखे।

==========

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा इति श्रुतिः। तदनुसारं धर्मः। विश्वप्रतिष्ठापकः भवतीति ज्ञायते। एवमपि श्रूयते धर्मे सर्व प्रतिष्ठितम्, तस्माद् धर्मं परमं वदन्ति इति। सोऽयं धर्मः सिद्ध साध्यभेदेन द्विविधो दृश्यते शास्त्रग्रन्थेषु। रामो विग्रवान् धर्मः, कृष्णं धर्म सनातनम् इत्येवं रूपेण रामकृष्णादयः अन्ये च यागद्रव्य गुणकालादयः सिद्ध धर्ण पदवाच्याः भवन्ति। यागदानादयः क्रियारूपाः साध्याधर्माः भवन्ति। श्रेयस्सा धनताको हि धर्मः इति श्रेयस्साधनताकत्वं धर्मस्य लक्षणं भवतीति शास्त्रकाराः ब्रुवन्ति। अत्र मनुराह –

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिः नित्यमद्वेषरागिभिः।

हृदयेनाभ्यनुज्ञातः यो धर्मस्तं निबोधत॥[52]

---

[52] मनुस्मृति – २.१

अत्र वेदविद्भिः अनुष्ठानपरायणैः असूयाद्वेषादि विदूरैः हृदयपूर्वकम् अङ्गीकृतः धर्म इति उच्यते। एवं पुनराह मनुः –

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।

आचारश्चैव साधूनाम् आत्मनस्तुष्टिरेव च॥[53]

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।

एतत् चतुर्विधं प्राहुः साक्षात् धर्मस्य लक्षणम् ॥[54]

अनेन श्रुति-स्मृति-सदाचार-आत्मसन्तुष्ट्यदीनि च चत्वारि धर्मे प्रमाणानीति ज्ञायते। एतादृशं महिमापोषितं धर्म बोधयति यत् शास्त्रं तद् धर्मशास्त्रमिति प्रशंस्यते। अत्र च वर्णधर्मः, आश्रमधर्मः, वर्णाश्रमधर्मः, गुणधर्मः, निश्चतधर्मः, साधारणधर्मश्चेति षोढाधर्मः प्रतिपादितः धर्मशास्त्रग्रन्थेषु। स्मृतिसाहित्यं, सूत्रसाहित्यं, निबन्धसाहित्यम् इति धर्मशास्त्रं त्रेधा प्रवर्तते। व्यवहारोपयोगिनः, नियमकल्पान् व्यवस्थापयति। धर्मशास्त्रं न केवलं सनातनं तत्त्वं परिपोषयति। आधुनिकं विज्ञानमपि तत्र तत्र निहितं विज्ञारयतीति विद्वांसो जानन्त्येव धर्मशास्त्रग्रन्थेषु संस्कारस्य वर्णनं निरूपणस्थानं भजते। कोऽयं संस्कारः? यश्चाधुनापि तत्र तत्र क्वचित्श्रवणपथे, क्वचित् मननपथे, कुत्राचित् करणपथे च दृश्यते। तदुच्यते संस्क्रियते इति संस्कारः। सम् उपसर्गपूर्वक कृञ् धातोः घञ् प्रत्ययेन एवं संपरिभ्यां करोतौ भूषणे इति सूत्रेण भूषणार्थे सुट् प्रत्यये संस्कारशब्दो निष्पन्नः भवति। अस्य चार्थं बहुधा वर्णयन्ति शास्त्रकाराः। द्रव्यगुणसंस्कारेषु बादरिः इति मीमांसासूत्रं जैमिनि प्रणीतम्। तद्व्याखानावसरे शबरस्वामी भाष्यकारो ब्रवीति – संस्कारो नाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्य चिदर्थस्य इति। येन च पदार्थो योग्यपदवीं क्रियासु भजते स संस्कार शब्दार्थ इति अत्र लभ्यते। एतदेव तन्त्रवार्तिकेऽपि कुमारलभट्टः प्राह – योग्यतां चादधाना क्रियाः संस्कारा इत्युच्यन्ते। आचार्य चरकः प्राहः – संस्कारो हि नाम गुणान्तराधानम् इति चरकसंहिता –विमान-१.२७। एवं श्रीभाष्ये भगवद्रामानुजपादाः प्राहुः – संस्कारो हि नाम कार्यान्तरयोग्यतासम्पादनम् इति श्रीभाष्यम् जिज्ञासाधिकरणम्। एवं संस्कारप्रकाशकारः कथयति – आत्मशरीरान्यतरनिष्ठो। विहितक्रियाजन्योऽतिशयविशेषः संस्कारः इति। काव्याशास्त्रेऽपि संस्कारपदप्रयोगः अन्यान्यार्थेषु प्रयुक्तो दृश्यते। यथा – निसर्गसंस्कारविनीतइत्यसौ नृपेण चक्रे युवराजशब्दभाक् इति[55]। अत्र शिक्षासंस्कृतिप्रशिक्षमरूपः संस्कारः प्रकटितः।

---

[53] म.स्मृ -२.६

[54] म.स्मृ-२.१२

[55] रघुवंशम् -३.३५

एवमन्यत्र व्याकरणशुद्धिरूपः संस्कारः प्रकटितः –संस्कारवत्येव गिरिमनीषी तया स पूतश्चविभूषितश्च।[56] शोभाभूषणरूपः संस्कारः शाकुन्तले प्राप्यते – स्वभावसुन्दरं वस्तु न संस्कारमपेक्षते ।[57]

एवं परिष्काररूपः संस्कारः कथ्यते यथा –

प्रयुक्तसंस्कार इवाधिकं बभौ।[58]

शुद्धिक्रिया धार्मिकविधिविधानरूपः संस्कारः मनुस्मृतौ प्रोक्तः। यथा –

कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्यचेह च।[59]

एवमन्यान्यार्थेषु प्रयुक्तोऽपि संस्कारशब्दः शुद्धिरूपमर्थमेव सर्वत्र समानतया ज्ञातुं प्रभवामो वयम्।

अयं संस्कारः गृह्यसूत्रेषु प्राधन्यं भजते। क्वचित् विवाहमारभ्य समावर्तनं यावत्, क्वचित् गर्भाधानमारभ्य अन्त्येष्टिं यावादिति च वर्णनाव्यत्यासो दृश्यते। एवं संख्याविषयेऽपि संस्काराणां मतभेदो दृश्यते।यथा – आश्वालयने एकादश, पारस्करे त्रयोदश, वोधायने त्रयोदश, वैखानसे अष्टादश, गौतमधर्मसूत्रे चत्वारिंशत् इति। मनुस्मृतौ तु गर्भाधानम्, पुंसवनम्, सीमान्तोन्नयम्, जातकर्म, नामकर्म, निष्क्रमणम्, अन्नप्राशनम्, चूडाकर्म, उपनयनम्, केशान्तः, समावर्तनम्, विवाहः, श्मशानम्।

याज्ञवल्क्यस्मृतौ तु केशान्तसंस्कारमपहाय अन्ये पूर्वोक्ताः स्वीकृताः संस्काराः। साम्प्रतं संस्काराणां प्रयोजनमधिकृत्य किंचित् पश्यामः।

लोकप्रियमूलं प्रयोजनम् –

संस्काराणामनुष्ठाने प्रथमप्रयोजनं भवति लोकप्रियमूलता। प्रयोजनमिदं विश्वासपूर्वकं भवति। एतच्च सर्वेष्वपि देशेषु समानं भवति इति वयं पश्यामः हितकरं कर्म कर्तुं सर्वोऽपि मानवः स्वार्थसिद्धये प्रयतते। अतः दृष्टमूलम् अदृष्टमूलम् वा कर्म कर्तु मानवो विश्वसिति। अत एव अधुनापि केचन संस्काराः तथैव अनुष्ठीयन्ते यथा शास्त्रेषु प्रकटिताः।

---

[56] कुमारसम्भवम् -१.२८

[57] अभिज्ञानशाकुन्तलम् -७.३३

[58] रघुवंशम् -३.१८

[59] मनुस्मृतिः २.२६

अशुभनिवारणमूलम् –

स्वाभीष्टं प्राप्तुं यथा मानवानां प्रकृतिः स्वाभाविकी तथैव अनिष्टनिवारणायापि प्रकृतिः आवश्यकी। अत एव बहुषु संस्कारेषु अपि अनिष्टनिवृत्तिरूपा प्रार्थना मन्त्ररूपेण श्रूयते। यथा –गर्भाधानसंस्कारे – शिशुषु आक्रमकारिन् कूर्कर । सुकूर्कुर शिशुं मुञ्च। हे समीर त्वं पत्यादर प्रकटयामि इत्यादिकम्। भूतपिशाचादीनाम् अपाकारणाय मन्त्राः प्रवर्तन्ते। तैश्च मन्त्रैः मानवाः प्रवर्तन्ते तत्तसंस्कारान् कर्तुमिति अनिष्टनिवारणमपि संस्काराणा प्रयोजनं भवतीति वक्तुं शक्नुमः। एवं शिशोः चौलकर्मसंस्कारसमये कर्तितकेशान् गोमयपिण्डेन सह गर्ते पिता निक्षिपति मन्त्रपूर्वकमिति वयं जानीमः। एतदनुष्ठानस्यापि प्रयोजनं विपरीततत्त्वनिवारणम् भूतपिशाचादितः संरक्षणम्, अमङ्गलतत्त्वदूरीकरणम्, प्रतिबन्धकघटनम् प्रकृतकार्य विरोधतत्त्वदूरोत्सारणम् च।

इष्टार्थसिद्धिप्रदपरं प्रयोजनम् -

संस्काराणां वैदिकनामनुष्ठाने अन्यदेकं महत्त्वपूर्ण प्रयोजनं विद्यते यत् इष्टार्थसिद्धये औन्मुखकरणम्। अर्थात् अनेन च संस्कारेण यथाविधि अनुष्ठानेन फलसिद्धिः भवतीति जनाः प्रतिपाद्यन्ते, तथैव प्रयन्तते च। उपनयनविवाहादिसंस्कारेषु आचार्यशिष्ययोः दम्पत्योश्च हृदयस्पर्शरूपः संस्कारो विधीयते, येन च एतेषां परस्परयक्षुण्णं सौहार्दं वर्धते इति प्रसिद्धिरस्ति। एवमेव सीमन्तोन्नयनसंस्कारे औदुम्बरवृक्षस्य संस्पर्शः स्त्रीणां विहितः उपनयने वटोः, विवाहे कन्यायाश्च अश्मारोहणसंस्कारः इत्यादयः बहवः नैकफलद्योतकाः प्रतीयन्ते। अनेनापि प्रभाविताः मानवाः तत्कर्मणि प्रर्वतन्त इति तु न तिरोहितमस्माकम्।

व्यवहारमूलं प्रयोजनम् –

संस्काराणां व्यावहारिकं प्रयोजनमपि दृश्यते। लोकव्यवहारसंरक्षणरूपं प्रयोजनमपि वक्तुं शक्यते संस्काराणां। यथा जातस्य शिशोः जातकर्म, तदनु नामकरणं, तदनु चूडादिः इत्येवं लोके व्यवहारो अनादिकालप्रवर्तितो दृश्यते। तत्परिपालनाय अनायासेन मनः प्रवर्तते समेषां मानवानामिति प्रत्यक्षसिद्धिः नः। ब्राह्मणत्वादि व्यवहारसिद्धिः संस्कारेणैव भवतीति स्पष्टं कथयति मनुः –

स्वाध्यायेन व्रतैः होमैः त्रैविद्येनेज्यया सुतैः। महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥ मनुस्मृतिः २.१८ इति

उपनयनसंस्कारणैव मानवः द्विजतां प्राप्नोतीति प्रतिपादयिनुमेव गौतम धर्मसूत्रमपि प्रवर्तते तद् द्वितीयं जन्म इति।

नैतिकप्रयोजनम् –

संस्कारणां नैतिकप्रयोजनमपि दृश्यते। येन च संस्कारानुष्ठानपरायणाः गुणतो महीयांसः विलसन्ति। अत एव च त्वारिशत् संस्कारनिरूपणपरः गौतममुनिः संस्कारोल्लेखपूर्व तत्रैव अष्टौ आत्मगुणाः इति दया-क्षमा-अनसूया-शौच-शमः-उचितव्यवहारः-निरीहता-लोभ विवर्जनम् इत्येवं रूपाः वर्णिताः।

सामाजिककल्याणप्रदं प्रयोजनम् –

भारतीयसंस्कृतौ संस्काराणां विशिष्टं स्थानं विद्यते सामाजिकक्षेत्रे। उपनयनदि संस्कारावसरे बन्धुजनानां, गुरुजनानां, स्नग्धपात्राणां, सुपरिचितजनानां, दयनीयपात्राणां च आशीर्वादप्रदानकल्पेन भोजनादिविधानेन, उचितवस्तु आदानप्रदानादिकरणेन च किमपि एकं सामाजिकं निरतिशयानन्दकल्पं तत्त्वमनुभवामो वयम्।

किं च वैज्ञानकमपि प्रयोजनं एकैकस्य विद्यत इति आधुनिकाः परिपश्यन्ति। यथा – गर्भाधानादि संस्काराणां कालनियमः प्रोक्तः, तदति क्रमे क्षतिकरः इत्यापि सूचितः। तदत्र गर्भाधानविषये स्पष्टमनुभूयते। यथा –

ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडशस्मृताः। चतुर्भिरितरैः सार्धामहोभिः सद्विगर्हितैः॥ म.स्मृ -३.४६

एकैकस्यिन् रात्रौ क्रियमाणस्य गर्भधानस्य फलसूचनमपि विहितमस्ति। अपि च लिङ्गभेदनिर्णयायापि प्रवर्तते तत्र मनुशास्त्रम्। तदाह –

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु। तस्माद् युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदातर्वे स्त्रियम्॥ म.स्मृ -३.४८

उपसंहारः -

अत्र जीववैज्ञानकमतं मनोवैज्ञानिकमतं च समरसतामनुभवतीति उच्यते। एवमन्येषामपि संस्काराणां फलं विज्ञानदृष्ट्या ज्ञातुं प्रभवमो वयम्। अतः संस्काराश्चावश्यमनुष्ठेयास्साम्प्रतमपि अनुसरणीयम्।

सन्दर्भग्रन्थसूची

१.त्रिवेदी, भवानी शङ्करः, संस्कार प्रकाश,श्री लाल वाहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली,२००९

२. काणे, पि.भि., धर्मशास्त्र का इतिहास (पञ्चमभाग),उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ,१९९५

३.रूस्तगी, उर्मिला, मनुस्मृति (द्वितीयभाग),जे.पि.पब्लिशिङ्ग हाउस, दिल्ली,२००५

४.मण्डलिक्, विश्वनाथ नारायण,मानवधर्मशास्त्रम्,गणपत् क्रिष्णाजी प्रेस,वम्वे,१८८६

५.द्विवेदी, प. गिरिजा प्रसादः,मनुस्मृतिः, मुंशी नवलकिशोर सी.आई.ई प्रेस, लखौ,१९१७

६.Buhler, G., The Laws Of Manu (Vol 25), Sacred Books of The East

७.Nandargikar, Gopal Raghunath, The Raghuvamsa of Kalidasa, Motilal Banarasidass, Varanasi, 1982

अध्यात्मरामायण में निहित सांस्कृतिक तत्त्वों की अद्यतन उपयोगिता

गीताशुक्ला

कूटशब्द श्रीराम, लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक

शोधसार

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई न कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।।

संस्कृत वाङ्मय में श्री रामकथा का अत्यन्त महत्त्व है। भारतीय परम्परा में श्रीराम को मर्यादा पुरूषोत्तम के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। भगवान के अनेक अवतारों में श्रीराम सर्वाधिक लोकप्रिय हुए हैं। यही कारण है कि राम के चरित्र को लेकर पर्याप्त साहित्य का प्रणयन हुआ है। भारतीय जनमानस में राम के प्रति असाधारण श्रद्धा का भाव दृष्टिगत होता है। अध्यात्मरामायण कोई नवीन ग्रन्थ नहीं है, यह परम पवित्र गाथा साक्षात् भगवान शंकर ने अपनी प्रेयसी आदिशक्ति श्री पार्वती जी को सुनाई है। यह आख्यान ब्रह्माण्ड पुराण के उत्तरखण्ड के अन्तर्गत माना जाता है। अध्यात्मरामायण के रचयिता महर्षि वेदव्यास जी इसलिए माने जाते हैं क्योंकि इसकी रचना पुराणों के समान हुई है। वायु पुराण के अनुसार सर्वप्रथम ब्रह्मा ने मातरिश्वा के लिए पुराण–प्रणयन किया था और बाद में महर्षि व्यास ने ग्रन्थ रूप में पुराणों का प्रणयन किया।[1] पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतः।[2] अध्यात्मरामायण को ही विश्व का प्रथम रामायण माना गया है। अध्यात्मरामायण में सात काण्ड हैं। बालकाण्ड में श्रीराम के बालचरित का मनोरम वर्णन है। अयोध्याकाण्ड में अयोध्या में घटने वाली घटनाओं का, अरण्यकाण्ड में श्रीराम के वनभ्रमण का, किष्किन्धाकाण्ड में सुग्रीव से मैत्री व बाली वध का, सुन्दरकाण्ड में लंका–वर्णन, युद्ध काण्ड में राम–रावण युद्ध का तथा उत्तरकाण्ड में राम–राज्य का निरूपण है। काण्डों का नामकरण वर्ण्य–विषय एवं गतिविधियों के आधार पर किया गया है।

==========

अध्यात्मरामायण में परम रसायन रामचरित का वर्णन करते–करते पद–पद पर भक्ति, ज्ञान, उपासना, नीति तथा सदाचार सम्बन्धी दिव्य उपदेश दिए गए हैं। विविध विषयों का विवरण रहने पर भी अध्यात्मतत्त्व के विवेचन की प्रधानता रहने के कारण इसे अध्यात्मरामायण कहा जाता है। आध्यात्मिक विचार का अभिप्रायः है आत्मा का दर्शन–

विसृज्य सर्वतः संगमितरान् विषयान् बहिः।
बहिः प्रवृत्ता क्षगणं शनैः प्रत्यक् प्रवाहय।।[3]

महत्त्व के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि – एकैकाक्षरपुंसां महापातकनाशनम्।

अध्यात्मरामायण में दार्शनिक तत्त्वों के साथ सांस्कृतिक तत्त्वों का भी सम्यक् निरूपण है। वर्तमान समय में वे सांस्कृतिक तत्त्व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

भारतीय संस्कृति विविधरूपिणी व बहुमुखी रही है मानव के प्रत्येक कार्यक्षेत्र में हमारी संस्कृति विकसित हुई है। इसकी जड़े मानव–जाति की शक्ति, मानवीय भावना, मूल्यों तथा सामाजिक विधान की विशिष्ट व्यवस्थाओं में समाई हुई है। यही कारण है कि यह अब तक निरन्तर गतिशील है।

ठीक ही कहा गया है कि– यूनान मिस्र रोमाँ सब मिट गये जहाँ से।

कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।।[4] मुशी इकबाल

संस्कृति का प्राचीनतम प्रयोग यजुर्वेद में मिलता है।[5] सा संस्कृतिः प्रथमा विश्वकरा

किसी राष्ट्र का अस्तित्व उसकी संस्कृति पर अवलम्बित रहता है। संस्कृति के उदयास्त से ही राष्ट्र का उदयास्त होता है। इसलिए भारतीय परम्परा ने सदैव संस्कृति–निष्ठा के मंगलमय मार्ग को अपनाया है। भारतीय संस्कृति भारत के कण–कण में व्याप्त है। छान्दोग्य उपनिषद में संस्कृति को किसी देश या समाज के सम्पूर्ण जीवन व्यापारों एवं तत्त्वों की समष्टि कहा गया है।[6]

किसी समाज व राष्ट्र की श्रेष्ठतम उपलब्धियाँ ही संस्कृति हैं।[7]

भारतीय संस्कृति में लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक आर्थिक व राजनीतिक सभी प्रकार की अनुकूल चेष्टाएँ आ जाती हैं, परन्तु उनमें से सम्यक् चेष्टाएँ ही संस्कृति कहलाती हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि श्रुति, स्मृति, सदाचारादि से अनुमोदित व उन पर आधारित कृति (चेष्टाएँ) ही भारतीय संस्कृति के स्वरूप है।

भारतीय संस्कृति भूत एवं भविष्य की अधिष्ठात्री है। राष्ट्रों की संस्कृतियों का अध्ययन करने पर उनसे दो धाराएँ दृष्टिगोचर होती हैं। (1) विचारधारा (2) आचारधारा प्रथम धारा को संस्कृति का आधार, सिद्धान्तवाद या आन्तरिक रूप कहा जा सकता है जबकि दूसरी को उसका विस्तार, कार्यवाद या बाह्य रूप। दोनों धारायें एक दूसरे की पूरक हैं क्योंकि आचारधारा के बिना कोई विचारधारा दुरूह कल्पना मात्र, अस्पष्ट व स्वप्न रूप दृष्टिगत होती है।

अध्यात्मरामायण में निरूपित सांस्कृतिक तत्त्व प्रस्तुत शोधपत्र का विषय है। सर्वप्रथम संस्कारों का उल्लेख किया जा रहा है। संस्कृति संस्कारों का समुदाय है। संस्कृति साध्य है, संस्कार उसके साधन।

संस्कार– (1) संस्कार शब्द सम् उपसर्गपूर्वक कृ धातु से भूषणात्मक सुट् के आगम से निष्पन्न होता है।

(2) संस्कारों हि गुणान्तराधानमुच्यते।[8]
(3) 'योग्यताचादधानाः क्रियाः संस्काराः इत्युच्यन्ते' [9]
(4) संस्कारो हि नाम गुणाधानेन वास्य दोषपनयनेन वा।[10]

संस्कारों का मानव–जीवन के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान है। संस्कारों के सम्पन्न होने से ही मानव सच्चे अर्थों में सामाजिक प्राणी बनता है तथा सांस्कृतिक कार्यों से अवगत होता है। जीवन के नैतिक होने से अध्यात्मिकता की ओर सुगमता से अग्रसर होता है। संस्कार शब्द का सामान्य अर्थ–शुद्धि, परिष्कार

अर्थात् स्वच्छता व पवित्रता है। धर्मशास्त्रों में भी संस्कार शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में हआ है– 'जिसके सम्पादित होने से कोई वस्तु या व्यक्ति किसी कार्य विशेष के उपयुक्त बने।'

कहा भी गया है– जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते'

संस्कारों की संख्या सात से लेकर चालीस तक बताई गई है। अधिकतर विद्वान् 16 संस्कारों को मान्यता देते हैं। गौतम–40 वैखानस–18 पारस्करग्रन्थसूत्र–13 मनुस्मृति–16 राजबली पाण्डेय–16

- **गर्भाधान अथवा निषेक–** प्रथम संस्कार, जन्म से पूर्व होता है। इस संस्कार का प्रचलन वैदिक काल से है। इसका उद्देश्य स्वस्थ सुशील व सुन्दर सन्तान प्राप्त करना है।[11]

  अध्यात्मरामायण में उल्लेख है– जब देवताओं और पृथ्वी के दुःख को सुनकर ब्रह्मा जी भगवान के पास गए तो भगवान् ने कहा मैं– पृथक–पृथक चार अंशों में प्रकट होकर शुभ दिनों में कौसल्या और दो अन्य माताओं के गर्भ से जन्म लूँगा।[12]

  वशिष्ठ जी ने राजा दशरथ को पुत्रेष्टि यज्ञ करने को कहा– पुत्रकामेष्टिं शीघ्र माचर।[13]

  राजा दशरथ ने मुनिजनों की सहायता से यज्ञानुष्ठान प्रारम्भ किया। यज्ञानुष्ठान के समय अग्नि में श्रद्धापूर्वक आहुति देने पर, तप्त सुवर्ण के समान दीप्तिमान हव्यवाहन भगवान् अग्नि एक स्वर्णपात्र में देवताओं द्वारा बनाई गई पुत्र प्रदायिनी पायस लेकर प्रकट हुए, राजा दशरथ को प्रदान की गई उस हवि को खाकर सभी रानियाँ गर्भवती हो गईं।

  उपभुज्य चरूं सर्वाः स्त्रियो गर्भसमन्विताः।।[14]

- **पुंसवन–** यह संस्कार गर्भ के तीसरे मास में पुत्र सन्तानोत्पत्ति हेतु होता था।[15]

  अध्यात्मरामायण में इसका उल्लेख नहीं है और हो भी क्यों, क्योंकि पुत्रकामेष्टि यज्ञ से पुत्र प्राप्ति तो निश्चित ही थी।

- **सीमन्तोन्नयन–** 16 इस संस्कार का वर्णन अध्यात्मरामायण में प्राप्त नहीं होता है। यह संस्कार गर्भ के चौथे, छठे या आठवें मास में होता है। इसमें गर्भिणी स्त्री के केशों (सीमन्त) को ऊपर (उन्नयन) की ओर उठाया जाता था। यह संस्कार दुष्ट शक्तियों व विघ्न बाधाओं से गर्भ की रक्षा के लिए किया जाता है।

- **जातकर्म–** जन्म के समय, नाभि छेदन से पूर्व जातकर्म संस्कार निष्पन्न होता था।[17]

  दसवाँ महीना लगने पर कौसल्या ने एक अद्भुत बालक को जन्म दिया।

  दशमे मासि कौसल्या सुषुवे पुत्रमद्भुतम्।।[18]

  गुरू वशिष्ठ ने प्रसन्न होकर उनके जातकर्म आदि आवश्यक संस्कार कराये।

  गुरूणा जातकर्माणि कर्त्तव्यानि चकार सः।।[19]

  तदनन्तर कैकेई से भरत तथा सुमित्रा से दो बालक उत्पन्न हुए।

  कैकेयी चाथ भरतमसूत्कमलेक्षणा।

सुमित्रायां यमौ जातौ पूर्णेन्दुसदृशाननौ।[20]

- **नामकरण–** ब्राह्मणगन्थों गृह्यसूत्रों तथा स्मृतियों आदि में नामकरण संस्कार का सविस्तार वर्णन किया गया है। इसमें शुभ घड़ी में देवपूजन और यज्ञाहुति का आयोजन होता था।

नामधेय दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽस्य कारयेत्।
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते।।[21]

कहते हैं– यथा नाम तथा गुणाः। अध्यात्मरामायण में गुरू वशिष्ठ द्वारा चारों बालकों का नामकरण किए जाने का उल्लेख है।

यस्मिन् रमन्ते मुनयो विद्ययाऽज्ञानविप्लवे।
तं गुरूः प्राह रामेति रमणाद्राम इत्यपि।।[22]

अर्थात् विज्ञान के द्वारा अज्ञान के नष्ट हो जाने पर मुनिजन जिनमें रमण करते हैं अथवा जो अपनी सुन्दरता से भक्तजनों के चित्तों को रमाते (आनन्दमय करते) हैं, उनका नाम 'राम' रखा।

संसार का भरण–पोषण करने वाला होने से दूसरे पुत्र का नाम 'भरत' समस्त सुलक्षण सम्पन्न होने से तीसरे का नाम 'लक्ष्मण' तथा शत्रुओं का घातक होने से चौथे पुत्र का नाम 'शत्रुध्न' रखा।

भरणाद्भरतो नाम लक्ष्मणं लक्षणान्वितम्।
शत्रुध्नं शत्रुहन्तारमेवं गुरूभाषत।।[23]

इस संस्कार के माध्यम से सुन्दर शोभन व कर्णप्रिय नाम रखने का प्रयास किया जाता था।

यद्यपि उक्त पाँच संस्कारों का स्पष्ट उल्लेख अध्यात्मरामायण में नहीं मिलता है परन्तु ये संस्कार हुए अवश्य होंगे पर मुख्य कथा के पोषक संस्कारों का ही वर्णन किया गया है ऐसा मेरा मत है।

- **उपनयन–** अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संस्कार है। इसका अभिप्राय स्वाध्याय अथवा वेदाध्ययन से होता है। इसमें बालक आचार्य के समीप अध्ययन के लिए जाता था। इसकी आयु आठ से बारह की आयु तक सम्पन्न करने का विधान है।

अध्यात्मरामायण में उल्लेख है कि– जब वे बालक कौमार–अवस्था में प्रविष्ट हुए तब वशिष्ठ जी ने उनका उपनयन संस्कार किया।

अथ कालेन च निरताः कौमारं प्रपेदिरे।।[25]

उपनीत वसिष्ठेन सर्वविद्याविशारदाः।

धनुर्वेद च निरताः सर्वशास्त्रार्थवेदिनः।।[26]

अर्थात् वशिष्ठ जी द्वारा उपनीत, लीला से नररूप धारण करने वाले, सम्पूर्ण लोकों के स्वामी, समस्त शास्त्रों का मर्म जानने वाले तथा धनुर्वेद आदि समस्त विद्याओं के पारगामी हो गये।

- **वेदारम्भ–** उक्त संस्कार में इसका भी उल्लेख है।

- **केशान्त या गोदान–** सोलह वर्ष की आयु के उपरान्त। इसमें प्रथम बार नापित द्वारा दाढ़ी बनाई जाती थी क्योंकि दाढ़ी, मूछ का आना तरूणाई का प्रतीक माना जाता था।
- **समावर्तन– 27** शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त दीक्षान्त समारोह सम्पन्न होने पर गृहस्थाश्रम में प्रवेश की अनुमति प्राप्त कर घर लौटता था।
- **विवाह–28** अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संस्कार है। पुरूषार्थ का मूल है। जनकपुरी में धुनषभंग और जयमाल के पश्चात् राजा जनक ने विश्वामित्र से कहा– 'मुनिवर कौशिक आप तुरन्त कुमारों के विवाहोत्सव के लिए राजा दशरथ को बुलाइए।'

विवाहार्थ् कुमाराणां सदारः सहमन्त्रिभिः।[29]

फिर शुभ दिन, शुभ मुहूर्त और लग्न के समय धर्मज्ञ जनक जी ने भाइयों सहित श्रीराम को बुलाया और सीताजी का हाथ पाणिग्रहण की विधि से प्रीतिपूर्वक श्रीराम चन्द्र जी के कर–कमलों में दे दिया और फिर प्रसन्नतापूर्वक उर्मिला लक्ष्मण जी को विवाह दी।

ततः शुभे दिने लग्ने सुमुहूर्ते रघुत्रयम्।[30]

रामाय प्रददौ प्रीत्या पाणिग्रहविधानतः।[31]

बालकाण्ड के छठे सर्ग में 31वें श्लोक से 57वें श्लोक तक विवाह–विधि एवं वैभव वर्णित है और इस प्रकार चारों भाइयों ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया।

लोकत्रय महागेहे गृहस्थत्वमुदाहृतः।।[32] अयो0 1/12

- **अन्त्येष्टि–** मानव जीवन का अन्तिम संस्कार है। अन्त्येष्टि क्रिया की तीन विधियाँ हैं– जलाना, गाड़ना, फेंकना। मत्स्यपुराण में विशदवर्णन है।

'यः संस्थितः पुरूषो दह्यते वा निखन्यते वाऽपि निकृष्यते वा'[33]

वशिष्ठ जी कहते हैं– 'राजा दशरथ के शव का विधिपूर्वक अन्त्येष्टि (कृत्य) संस्कार करो'।

त्यक्त्वा शोकं कुरू क्रियाम्।।[34]

कृत्यं कुरू यथान्यायमस्माभिः कुलनन्दन।।[35]

इस प्रकार गुरू वशिष्ठ द्वारा समझाये जाने पर अज्ञानजन्य शोक को छोड़कर राजा का विधिवत् अन्त्य कृत्य किया। जैसे अग्निहोत्री का अन्तिम संस्कार करना चाहिए उसी प्रकार शास्त्रानुकूल किया।

इति सम्बोधितः साक्षाद् गुरूणा भरतस्तदा।

विसृज्याज्ञानजं शोकं चक्रे सविधिवत्क्रियाम्।।[36]

अरण्यकाण्ड में जटायु के दाहकर्म का तथा किष्किन्धाकाण्ड में बाली के अन्तिम संस्कार का उल्लेख है। अन्त्येष्टि संस्कार में शवयात्रा, शवदाह, अस्थिचयन, भस्मप्रवाह, पिण्डदान, श्राद्ध, ब्राह्मण–भोज इत्यादि कृत्य सम्पादित किए जाते हैं।

वर्तमान समय में भी ये संस्कार उपयोगी हैं। इनकी वैज्ञानिकता सिद्ध की जा रही है। यद्यपि कुछ संस्कार अभी भी प्रचलित हैं परन्तु आवश्यकता है इन्हें समाज में विधिवत् व अनिवार्य रूप से सम्पन्न किए जाने की। ये संस्कार ही भारतीय संस्कृति को लोकप्रिय व उन्नत बनाते हैं।

संस्कारों के उद्देश्य थे– लौकिक समृद्धि व निर्विघ्न जीवन की कामना, मानव का सामाजीकरण, नैतिकता संवर्धन, हर्षाहर्ष की अभिव्यक्ति, मानव का सुसंस्कृत होना, दोषों का अपनयन, वाञ्छित वस्तुओं की प्राप्ति, आध्यात्मिक विकास तथा व्यक्तित्व का विकास आदि। इस प्रकार– ''संस्कार आध्यात्मिक शिक्षा की क्रमिक सीढ़ियों की तरह थे।''[37]

सांस्कृतिक तत्त्वों में बहुत विस्तार अपेक्षित है, कहना असंगत न होगा कि वह एक अलग विचार–विमर्श का बिन्दु है शोधपत्र में संस्कारों का उल्लेख ही पर्याप्त है अतः अन्य बिन्दुओं का दिग्दर्शन मात्र कराया जा रहा है।

- **आश्रम व्यवस्था–** 'जीवेम शरदः शतम्' की कामना के अनुसार प्राचीन काल में मानव जीवन को चार भागों में विभाजित किया गया था।
- **ब्रह्मचर्य–** जीवन का प्रथम आश्रम। अथर्ववेद के एक पूरे सूक्त में ब्रह्मचर्य की महिमा का विशवदर्शन है।[38]

  अध्यात्मरामायण बालकाण्ड के तीसरे सर्ग में व चौथे सर्ग में ब्रह्मचर्य का वर्णन 3/58, 59, 4/60

  अध्यात्मरामायण की कथा के अनुसार मर्यादा पुरूषोत्तम राम स्वयं अवतार होने के फलस्वरूप भी वे समस्त कार्यपूर्ण किये जो सामान्य मानव के लिये निर्धारित थे। बाल0 3/65 4/33
- **गृहस्थाश्रम–** गृहस्थ विभिन्न प्रकार के कार्यों की सिद्धि के लिये यज्ञादि किया करते थे। याचक का निरादर नहीं करते थे।

  अपने धर्म का पालन करने की बाध्यता होती थी। बाल0 3/3 3/5 4/9 व 11
- **वानप्रस्थ–** वानप्रस्थी निःस्वार्थ राष्ट्रसेवा में रत रहता है यद्यपि गृहस्थाश्रम ही सब आश्रमों में आश्रम है किन्तु उसके बाद उसके कर्त्तव्यों की इतिश्री नहीं हो जाती। अध्यात्मरामायण में कोई भी राजा वानप्रस्थ आश्रम की स्थिति में नहीं पहुँचा था। महाराज दशरथ का तो राम के राज्याभिषेक के पूर्व ही देहावसान हो गया था तथा रघुकुल तिलक श्री रामचन्द्र ने पुत्रों का राज्याभिषेक करने के बाद अपने भाइयों सहित इस लोक को त्याग कर प्रयाण किया था।
- **संन्यास–** राम ने वनवास के समय संन्यासाश्रम की गरिमा का पालन किया। वनवासी जीवन संन्यासी के लिये मान्य था, अतः वे सांसारिक सुखों का परित्याग करके कुटी बनाकर वन के खाद्य–पेय पर ही निर्भर रहे। अयो0 5/68, 69, 70, 71

इसी प्रकार अध्यात्मरामायण में वर्णव्यवस्था, पुरूषार्थचतुष्टय, व्रत, तीर्थ, दान, यज्ञ, अतिथिसत्कार, स्त्रियों की स्थिति आदि समस्त सांस्कृतिक तत्त्व निहित हैं।

भारतीय संस्कृति की आधारशिला वर्णाश्रम व्यवस्था आदि विशिष्टताओं के कारण आज भी भारतीय संस्कृति उपादेय है। यद्यपि हमारा देश प्रगतिशीलता की ओर प्रत्येक क्षेत्र में अग्रसर है तथापि यदि वह प्रगति संस्कृत, संस्कृति व संस्कारों से सम्पन्न हो जाए तो वह दिन दूर नहीं जब भारत पुनः जगद्गुरू कहलायेगा और जब तक संस्कृति का दाय अगली पीढ़ी को मिलता रहेगा जीवन की गुणवत्ता कभी कम नहीं होगी।

सन्दर्भ–

1. वायु पुराण 103/58
2. मत्स्यपुराण 53/3
3. अ0रा0 युद्धकाण्ड 6/48
4. मुंशी इकबाल
5. 'सा संस्कृतिः प्रथमा विश्ववारा'
6. कस्यापि देशस्य समाजस्य वा विभिन्न जीवव्यापारेषु सामाजिकसम्बन्धेषु वा मानवीयत्वदृष्ट्या प्रेरणा प्रदानां तत्त्वदर्शनां समष्टिरेव संस्कृतिः। छान्दो0 8/4/1
7. मैथ्यू आर्नल्ड
8. चरक संहिता
9. तन्त्रवार्तिक
10. वेदान्तसूत्र शाकरभाष्य 1/2
11. अथर्ववेद 2/25/3
12. अ0रा0 बाल0 2/27
13. अ0रा0 बाल0 3/5
14. अ0रा0 बाल0 3/12
15. 'पुमान् प्रसूयेत् येन कर्मणा तत् पुंसवनमीरिता'
16. 'सीमन्तः उन्नीयते यस्मिन् कर्माणि तत् सीमन्तोनयनम्' पार0गृ0सू0
17. जातस्य कुमारस्योच्छिन्नायां नाड्यां भेद्याजननायुष्येकरोति' पार0गृ0सू0
18. अ0रा0 बाल0 3/13
19. अ0रा0 बाल0 3/37
20. अ0रा0 बाल0 3/38
21. मनुस्मृति 2/30
22. अ0रा0 बाल0 3/40
23. अ0रा0 बाल0 3/41
24. 'बालकस्य यत्प्रथमभोजनं तदुच्यते प्राशनम्' शब्दानुशासन महाभाष्य 6/4/25
25. अ0रा0 बाल0 3/59
26. अ0रा0 बाल0 3/60
27. तत्र समावर्तनं नाम वेदाध्ययनान्तरम् गुरूकुलाद् स्वगृहागभनम्।
28. विशिष्टं वहनम् वि वह् धञ्
29. अ0रा0 बाल0 6/34
30. अ0रा0 बाल0 6/45
31. अ0रा0 बाल0 6/53
32. अ0रा0 अयो0 1/12
33. मत्स्यपुराण 3/13/7–18
34. अ0रा0 अयो0 7/108

35. अ0रा0 अयो0 7/108
36. अ0रा0 अयो0 7/109
37. डॉ0 राजबली पाण्डेय
38. अथर्ववेद 11/5/17, 11/5/24

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. श्रीमद्वाल्मीकि रामायण(प्रथम खण्ड), गीताप्रेसगोरखपुर, संवत् 2069
2. ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेसगोरखपुर, संवत् 2068
3. विष्णुपुराण, सम्पादक नागशरणसिंह, प्रकाशक- नाग पब्लिशर्ज़, 11ए०, जवाहर नगर, दिल्ली-7, संस्करण – 1984
4. पं. रामतेज पाण्डेय (व्याख्याकार), 2009, ***श्रीमद्भागवत्पुराण***, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी।
5. श्रीमन्महर्षि वेदव्यास, साहित्याचार्य पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम' (अनुवादक), सं. 2065, ***महाभारत***, गीताप्रेस गोरखपुर।
6. पं. रामतेज पाण्डेय (व्याख्याकार), 2009, ***वाल्मीकि रामायण***, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी।
7. शब्दकल्पद्रुमः.राधाकान्त देव बाहादुर,ओरिएंटल बुक् सेन्टर ,दिल्ली, 2002
8. https://hi.wikipedia.org/wiki , 10.06.2016

ऋग्वेदे मनस्तत्त्वपरिशीलनम्

नीलमाधवप्रधानः

कूटशब्दाः **ऋक्, अवसादः, गायत्रीमन्त्रः, क्रतवः**

शोधसारः

लोकोऽयं सुखदुःखसमन्वयात्मकम्। मानवानां इयमेव प्रवृत्तिः भवति यत् इष्टप्राप्तौ सुखस्यानुभवः अनिष्टे च दुःखस्यानुभवः जायते। तर्हि सुखदुःखयोः अनुभवे कानि वा कारणानि मार्गाः वा सन्ति यस्यानुसरणं मानवैः कर्तव्यं भवति। अर्थात् कोऽयं मार्गः सुखस्य कोऽयं मार्गः दुःखनिवृत्तेः एतत् सर्वमपि सततं विचारणीयं भवति। प्राचीनकाले अनेके मुनयः तेषां समुचितमार्गाणाम् अन्वेषणं विधाय समुचित कार्येषु प्रवृत्ताः निवृत्ताश्च भवन्ति स्म। तेषु मार्गेषु वेदोऽपि कश्चन विशिष्टः मार्गः, धर्ममूलरूपः। यत्र मनसः प्रवृत्तिविषये अवसादस्य कारणानि च विषये अनेकानि तत्त्वानि वर्णितान्यवलोकयन्ते। यतोहि उक्तं वर्तते – **इष्टप्राप्तेरनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यः ग्रन्थः वेदयति सः वेदः।** आमनन्ति समालोचकाः संस्कृतवाङ्मये आलौकिकस्वरूपस्य परब्रह्मणः मुखादेव विनिश्रुताः ऋक्-यजु-सामादयः वेदाः। तस्मिन् वेदे सन्त्येनेकानि धर्मस्वरूपाणि तत्त्वानि। यतोहि उच्यते – **वेदोऽखिलो धर्ममूलम्** इति । ऋक् इति शब्दस्य साक्षादर्थो भवति मन्त्रः संहिता वा। ऋच्यते स्तूयते अनया इति ऋक् । अस्मिन् वेदे अग्निः, यमः, वरुणादीनां देवानां यद्यपि स्तुतयः सन्ति तथापि अस्ति कस्यचन विशिष्टस्य विषयस्योपरि कापि समालोचना । स च विषयो भवति मनसः स्वरूपं, तस्मिन् मनसि अवसादस्य कारणानि च। अर्थात् लोकेऽस्मिन् कैः कारणैः मनसि विषादं खेदो वा जायते, तस्य को वा निराकरणोपायः इत्येते विषयाः सुचर्चिताः सन्ति ऋक्संहितायाम् । तदेव शोधपत्रेऽस्मिन् सोदाहरणं चर्चिष्यते।

==========

संस्कृते अवसादशब्दस्यार्थः त्रिषु अर्थेषु क्रियते। तत् यथा विशरणं, गतिः अवसादनञ्च तेनैव अवसाद इति शब्दे षदॢ इति धातोः घञ् प्रत्यये निष्पाद्यते। विशरणगत्यवसादनेषु इति। अत्र विशरणशब्दस्यार्थः विनाशः। गतिशब्दस्य अर्थत्रयम्- ज्ञानं , गमनं, प्राप्तिश्च। उक्तं हि गतेः त्रयः अर्थाः ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्च इति। अवसाद नाम शिथिलीकरणम्। अव् इत्युपसर्गपूर्वकं सद् धातुनां घञ् प्रत्ययेन अवसादः शब्दस्यार्थः भवति नीचैः गमनं अधोगतिः वा। अवसादः मानवस्य तादृशी अवस्था भवति येन तस्यः मनः शिथिलं भवति। सः शनैः शनैः कुमार्गं प्रति प्रविशति च।

वेदेषु अवसादस्य परिकल्पना

यद्यपि सन्ति चत्वारः वेदाः, तथापि तत्र आधिक्येन ऋग्वेदे अवसादविषये केचन मन्त्राः प्रतिपादिताः सन्ति वेदस्य अङ्गरूपेण याः उपनिषदः सन्ति तत्रापि अवसादविषये मानवानां प्रवृत्तिनिवृत्ति च विषये बहवः मन्त्राः जनान् सुकर्मणि प्रवर्तयन्ति उपदिशन्ति च। न केवलं ऋग्वेदे अपि च सामवेदे यजुर्वेदे, अथर्ववेदेऽपि मनसः प्रवृत्तिविषये तथा अवसादस्य स्थितिविषये सन्ति अनेके मन्त्राः। तदैव शीर्षकानुसारेण शोधपत्रेऽस्मिन् निरूपितं वर्तते।

ऋग्वेददिशा मनसः प्रवृत्तिः

मननात् मन्त्रः ऋग्वेदे सन्त्यनेके मन्त्राः येषां मननेन मनसः प्रवृत्तिः शुद्धरूपेण सर्वत्र गच्छति, अर्थात् तेषां मन्त्राणां सततं स्मरणेन मनः निर्मलत्वं प्राप्नोति तथा सत् कर्मसु तस्य प्रवृत्तिः भवति। ऋग्वेदे तृतीयमण्डले द्विषष्टितमे अध्याये दशममन्त्रो भवति गायत्रीमन्त्रः यः मानवानां जीवने सुखप्राप्तये तथा बुद्धेः शुद्धतायै कापि विशिष्टा प्रार्थना भवति। तथाहि

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।[60]

अनेकैः परीक्षणैः एतत्प्रमाणीकृतं यत् गायत्रीमन्त्रजपेन प्राणशक्तिः बुद्धिशक्तिश्च सततम् अभिवर्धते। तदनुगुणं मनुष्यः संयमी जितेन्द्रियः मनोनिग्रही च भवति। अथर्ववेदस्य मन्त्रेण मनसि समताभावस्य आध्यात्मिकचिन्तनं प्रति मानवानां प्रवृत्तिः जायते। यदि सूक्ष्मातिसूक्ष्मविचारिते तर्हि ऋग्वेदः मुख्यरूपेण शुभविचाराणमुपरि जनान् प्रेरयति। जगत्यस्मिन् आध्यात्मिकचिन्तनस्य मननस्य उपसनायाश्च आवश्यकता वर्तते तदर्थं मानसिकशुद्धतायाः अपेक्षा सततं वर्तते। ऋग्वेदे एकस्मिन् मन्त्रे मनसः प्रवृत्तिं प्रति विघ्नरहितं कार्यं प्रति उपदेशः प्राप्यते यत्र मनुष्य आलस्यरहितेन सुकर्मणि प्रवृत्तः भवेत्। तथाहि—

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतो
ऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सद्रिद्वृधे असन्न-
प्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे।।[61]

ऋग्वेदे प्रथममण्डले अष्टमे तथा दशममण्डले मनसः प्रवृत्ति-निवृत्तिम् इमित्तं केचनमन्त्राः प्राप्यन्ते। तत्र प्रथममण्डले दीर्घायुं प्रति साधनानि शुभविचारः, उन्नतिः, विकाशः, प्रगतिः प्रभृतिविषयाः निरूपितास्सन्ति। अल्पायुसन्दर्भ्

[60] ऋ. वे. 3.62.10

[61] ऋ.वे. 1.89.1

कारणानि सन्ति – अशुभविचारः, रोगः, शोकः, दैन्यश्च यत्र शुभविचाराः सन्ति तत्र देवाः निवसन्ति इति अष्टममण्डले निरूपितं वर्तते। यदि अस्माकं विचाराः शुद्धिरूपा भवन्ति तेन आत्मसाक्षात्कारोऽपि भवति ऋग्वेदे दशममण्डले भवति यावत् पर्यन्तं दुर्विचारणं विनाशः नैव भवति तावत्पर्यन्तं सुखस्य मार्गाः प्रशस्ताः नैव भवन्तीति ऋग्वेदे अष्टममण्डले प्रतिपादितम् ।

मनसः स्वरूपं विषयं तथा च प्रवृत्तिविषये अनेकमन्त्रेषु बहवः विचाराः ऋग्वेदे प्रतिपादिताः सन्ति इति निश्चीयते ।

ऋग्वेदे अवसादस्य कारणानि

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । अनेन सुभाषितेन मानवजीवने मनसः तथा तस्य नियन्त्रणविषये सततं विशिष्टं किमपि चिन्तनं जायते । यः जनः स्वमनः वशीकर्तुं प्रभवति सः मृत्योः सकाशादपि विजयं प्राप्तुं शक्नोतीति ऋग्वेदे निरूपितं वर्तते । तेन मननिग्रहः मानवानां परमध्येयः विषयः भवति । उक्तं हि –

यमाद्हं वैवस्वात् सुबन्धोमर्न आभरन् ।

जीवातवे न मृत्यवे अथो अरिष्टातये ।।[62]

ऋग्वेदे दशममण्डले अवसादस्य विषये निरूपितमस्ति यत् अवसादः न केवलं व्यष्टेः कृते अपि तु समष्टेः कल्याणाय काम्यं भवति । अर्थात् यैः हितकारिभिः स्तुतिभिः मनसः आह्वानं क्रियते तस्य प्रवृत्तिः तथैव फलप्राप्तये सिद्धयति। अनया ऋचा मनः जनकल्याणाय सदा प्रेरणं कुर्यादिति निर्दिष्टम् । उक्तं हि दशममण्डले –

मनो न्वाह्वामहे नाराशंसेन स्तोमेन ।

पितृष्णां च मन्मभिः ॥[63]

---

[62] ऋ.10-60-10

[63] ऋ. 10-57-3

मन्त्रेऽस्मिन् नाराशंस इति शब्दस्यार्थो भवति जनकल्याणाय प्रार्थना । यदि मनः दुखितं अवसादयुक्तञ्च भवति तदानीं जनः शुद्धमनसा जनकल्याणाय प्रवृत्तो भवति । अवसादरहितं मनः क्रोध-ईर्ष्या-प्रतिशोधभावनायां रहितः सन् विश्वहिताय विश्वबन्धुत्वस्थुनाय प्रवर्तते । अवसादरहितेन मनः जनकल्याणं भावनायाः यदिच्छति तदेव साक्षात् अवाप्तुं शक्नोति । उक्तं यथा ऋग्वेदे दशममण्डले –

यमैच्छाम मनसा सोयमागात् ।।[64]

उपसंहारः

एवञ्च ऋग्वेदे नैकेषु मन्त्रेषु मनसः स्वरूम्. अवसादस्य कराणानि मनसः कुत्र प्रवृत्तिः कथं वा भवति, कुत्र च निवृत्तिः जायते, एतेषां विषयासन्दर्भे चर्चा विहिताऽत्र।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. ऋक्सूक्तसंग्रहः, व्याख्याकारः डा० हरिदत्त शास्त्री, प्रकाशक-साहित्य भंडार – सुभाष बाजार- मेरठ-2, संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण
2. श्रीमद्भगवद्गीता(श्लोकार्थ सहित), गीताप्रेसगोरखपुर, संवत् 2060
3. श्रीमद्वाल्मीकि रामायण(प्रथम खण्ड), गीताप्रेसगोरखपुर, संवत् 2069
4. शतकत्रयम्, पुरोहित गोपीनाथ, प्रकाशक - भारतीय कला प्रकाशन, नारंग कलोनी, त्रिगर्त नगर, दिल्ली-110035, प्रथम संस्करण - 2010
5. ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेसगोरखपुर, संवत् 2068
6. https://hi.wikipedia.org/wiki , 10.06.2016

[64] ऋ.10-53-1

अथर्ववेद औषधीनां परिशीलनम्

लिपनकुमारमाझि

कूटशब्दाः **वेद, रोगोपशमः, औषधिः, रोगः**

शोधसारः

वेद इति शब्दस्य निष्पत्तिः विद् ज्ञाने इति धातुना घञ् प्रत्ययेन जायते। विद् धातुः ज्ञानार्थकं सूचयति। यद्यपि विद् धातुः विचारणार्थे लाभार्थे प्राप्त्यर्थे प्रयोगोऽपि जायते तथापि वेदशब्दः प्रमुखरूपेण ज्ञानमेव सूचयति। एवं च **विद्यन्ते भवन्ति, विन्दन्ति लभन्ते, विन्दन्ते विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सर्वाः सत्यविद्याः यैर्येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः।**

ऋक्-यजु-सामाथर्वभेदेन ते वेदाः चतुर्धा विभज्यन्ते। तेषु यद्यपि सन्त्यनेके विषयाः तथापि अथर्ववेद एव अनेकौषधिविषयं सूचयति। यद्यपि सम्प्रति आधुनिककाले तेषाम् औषधीनां प्रयोगः रोगोपशमनाय जनाः नैव कुर्वन्ति ज्ञानाभावात् समयाभावात् वा तथापि प्राचीनकाले मुनयः बहुधा तेषाम् औषधीनां प्रयोगः उपयोगश्च अनेकरोगाणाम् उपशमनाय कुर्वन्ति स्म। तदेव शोधशीर्षकेऽस्मिन् निरूप्यते।

शोधपत्रस्यास्य उद्देश्यम्

ऋक्-यजु-सामादयः ये वेदाः सन्ति तेषु अथर्ववेदैव विविधौषधीनां विषये तेषां प्रयोगविषये च अनेके मन्त्राः सन्ति। यद्यपि आधुनिकाः वयमिदानीं वेदस्य अध्ययनं नैव कुर्मः। तथापि महत्वदृष्ट्या अथर्ववेदस्य औषधीनां परिशीलनम् अवश्यं कर्तव्यम्। आधुनिककाले जनानां नास्ति समयः तेषाम् औषधीनां विषये ज्ञातुं प्रयोक्तुं च । परन्तु विविधरोगपचाराणाम् एषाम् औषधीनां प्रयोगः क्रियते चेत् अवश्यं रोगोपशमः जायते।

==========

अनेकौषधिस्वरूपविचारदिशा अथर्ववेदस्य वैशिष्ट्यम्

संस्कृतवाङ्मये यद्यपि चतुर्णामपि वेदानां महत्वं वर्तते। तथापि अथर्ववेदः औषधीनां विषये विशेषस्थानम् अस्ति। तत्र आयुर्वेदसम्बन्धितानि अनेकौषधयः सन्ति तेषां प्रयोगेण मानवानां बहुविधाः रोगाः उपशमिताः भवन्ति। आयुर्वेदस्य प्राचुर्यम् अथर्ववेदे वर्तते। तेषामौषधीनां प्रयोगद्वारा कस्य रोगस्य कृते प्रयोगः कर्तव्य इति अवश्यं ज्ञातव्यमस्माभिः ।तत्र अथर्ववेदे विद्यमानामौषधीनां नामानि यथा –

1)मुञ्जः(शरः), 2) रजनी(हरिद्रा), 3) रामा(भृङ्गराजः), 4) श्यामा(नील), 5) कृष्णा (इन्द्रवारूणी), 6) पर्णधिः (लोध्रः), 7) पृश्निपणी, 8) वचा (वच), 9) शेपहषर्णी (कपित्थः), 10) शतावरी (शतावर), 11) सीमः 12) अजशृङ्गी (मेढासिंगी), 13) कुञ्मलः (पद्म), 14) वरूणः, 15) शणः, 16) चक्री (प्रकीर्य), 17) लाक्षा, 18) अपामार्गः, 19) गुल्गुलुः (गुग्गुलुः), 20) कुष्ठः (कूठः), 21) शनिः, 22) अर्कः, 23) पिप्पली, 24) जीवन्ति, 25) यवः, 26) ब्रीहिः, 27) वजः (सर्षपः), 28) दर्भः (कुशः), 29) कनेरः, 30) कन्या (कुमारी) 31) अग्निः (चित्रकः), 32) उदुम्बरः, 33) बिल्वः, 34) रोहिणी (मांसरोहिणि), 35) मण्डूकी (मण्डूकपर्णी) इति । एतेषामौषधीनां विवरणं सामान्यतया इदानीं निरूप्यते ।

1.**मुञ्जः (शरः)**

मुञ्ज इत्यौषधिविशेषस्य पर्याप्तवर्णनं परिलक्ष्यते। अयमौषधिः विविधरोगनिवारकेति अथर्ववेदे उच्यते। ज्वरादिरोगाणां निवारणार्थं तथा रक्तस्त्रावनाशनार्थम् अथर्ववेदे मुञ्जस्य प्रार्थनां परिलक्ष्यते। तथाहि –

यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठन्ति तेजनम् ।

एवा रोगं चास्त्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इति ।।[65]

मुञ्जस्य नामान्तराणि -

भद्रमुञ्जः, शरः, बाणः, तेजनं तथा इक्षुवेष्टनम् एतानि नामानि मुञ्जस्य भवन्ति। मुञ्जः, मुञ्जातं, बाणः स्थूलदर्भः, सुमेखलम् एतानि मुञ्जस्य नामानि भवन्ति। एतस्य पुष्पं शरत् ऋतौ भविष्यति।

रजनी (हरिद्रा)

अथर्ववेदे रोगनिवारणौषधिरूपेण हरिद्रा इत्यस्य वर्णनमायाति। एतस्यौषधिविशेषस्य साक्षात् नाम न स्वीकृत्य रात्रौ उत्पन्नौषधि इत्युच्यते। तदर्थं रजनी इति नाम्ना गृह्यते। इयं रजनीति औषधिविशेषः श्वेतकुष्ठनिवारकः भवति। तथाहि –

नक्तं जातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च।

इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत्।। [66]

हरिद्रायाः नामान्तराणिः

---

[65] **अथर्ववेदः**. 1-2-4

[66] **अथर्ववेदः**. 1-23-1

हरिद्रा इत्यस्य अथर्ववेदे बहूनि नामानि श्रूयन्ते। तानि यथा – काञ्चनी, पीता, वरवर्णिनी, वर्णिनी, हलदी, हरिद्रा, योषित्प्रिया, युवती, हेमरागी, गौरी, यामिनी, क्षपा, सुवर्णवर्णा, मङ्गलप्रदा, कावेरी, उमा, पिजा, पवित्रा, हरिता, विषघ्नी, लक्ष्मीः, भद्रा शोभा, शोभना, हल्दी(हिन्दी भाषायाम्) हरदी, हलदी इत्यादयः भवन्ति।

परिचयः

हरिद्रायाः लता 2-3 Feet पर्यन्तं उच्चः, कोमलशाखा च भवति। पुष्पं तु पीतवर्णः भवति। अथर्ववेदे रोगनिवारकौषधिरूपेण तथा आयुर्वेदेऽपि कुष्ठरोगनाशाय एतस्यौषधेः प्रयोगः परिलक्ष्यते।

पर्णधिः (लोध्रः)

अथर्ववेदे रोगनिवारकरूपेण पर्णधिः शब्दस्य प्रयोगः दृश्यते। अयमौषधिः विषं नाशयति। एतस्यापरं नाम लोध्रम् इति। एतस्य लेपने विषनाशं भवति। तदेव अथर्ववेदे यथा –

शल्याद् विषं निरवोचं प्राञ्जनादुन पर्णधेः।

अपाष्ठाच्छ्रङ्गात् कुल्मलान्तिरवोच्यमहं विषम्।। [67]

नामान्तराणि

शाबरलोध्रः, लोध्रः, तिल्वं, तिरीटं, शावरं, पट्टिकालोध्रः इत्यादीनि। हिन्दीभाषया तु लोध इति।

पृश्निपर्णी

अथर्ववेदे रोगनिवारकौषधिरूपेण पृश्निपर्णी इत्यस्य वर्णानमायाति। तथाहि –

शं नो देवी पृश्निपर्ण्यशं निऋत्या अकः।

उग्रा हि कण्वजम्भनी नामाभक्षि सहस्वतीम्।।[68]

दिव्यगुणयुक्तः पृश्निपर्णी औषधिः कुष्ठरोगेण सह गर्भस्त्रवादिकीटान्नपि नाशयति।अन्यानपि विविधचर्मरोगान् नाशयति।

---

[67] **अथर्ववेदः. 4-6-5**

[68] **अ. वे. 2-24-1**

नामान्तराणि

वेदेषु एतस्यौषधेः विविधनामानि पठ्यन्ते। तानि यथा – पृश्निपर्णी, चित्रपर्णी, अहिपर्णी, त्रिपर्णी, चक्रपर्णी, ब्रह्मपर्णी, गुहा, अतिगुहा, महागुहा, तन्वी कलसी, सिलाङ्गली, लाङ्गलिका लांगली, दीर्घपत्रा, कदला इत्यदीनि हिन्दीभाषायां तु पिठवन, पिठौनी भवति।

परिचयः –

एतस्य वृक्षः 2/6 Feet पर्यन्तं उच्चः भवति। अत्र लघुलघुपुष्पाणि तानि च रक्तवर्णानि नीलवर्णानि च भवन्ति। फलं चु शृगालपुच्छमिव भवति। वृष्टिसमये पुष्पं शैत्यकाले च फलम् आगच्छति।

वचा (बचः)

अथर्ववेदे वचा इत्यौषधेः प्रयोगः रोगवर्धककीटानां नाशाय क्रियते। तथाहि –

दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरुरुमतृहम्।

अलगण्डून्त्ससर्वाञ्छलुनान् क्रिमीन् वचसाजम्भयामसि।।[69]

अन्वाक्त्र्यं शीर्षण्यमथो पार्ष्टेयं क्रिमीन्।

अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि।।[70]

वचा तु क्रिमीनाशकौषधिरूपेण उपयुज्यते। वचा दृष्टादृष्टक्रिमीन् च नाशयति। वचाविषये विविधनामानि वेदे लभ्यन्ते। तानि यथा- वचा, वच्या उग्रगन्धा, षडग्रन्था, गोलोमी, शतपर्विका मंगल्या, जटिला, रोमशा, भद्रा, कांगा, इक्षुपर्णी, श्लेष्मघ्नी इत्यादिनाम्ना ज्ञायते।

परिचयः

वचावृक्षः 2/5 Feet पर्यन्तं तथा जलाशये पङ्कस्थाने च आधिक्येन भवति। एतस्य कन्दमूलं हरिद्रा इव मृत्तिकान्तपर्यन्तं गच्छति। स्वेतपुष्पञ्च गुच्छरूपेण भवति। फलं तु लघुरूपेण भवति।

---

[69] **अथर्ववेदः. 2-31-2**

[70] **अथर्ववेदः. 2-31-4**

शेपहर्षणी (कपित्थः)

रोगनिवारकरूपेण कपित्थ इत्यौषधेः मन्त्र अथर्ववेदे परिलक्ष्यते। तथाहि –

यां त्वा गन्धर्वो अखनद् वरूणाय मृतभ्रजे।

तां त्वा वयं खनामस्योषधिं शेषहर्षणीम्।।[71]

अथर्ववेदे कपित्थः रोगनिवारकरूपेण यत् वर्ण्यते सम्प्रति तत् चिकित्साक्षेत्रेऽपि उपयुज्यते। लघुशङ्कानिरोधनार्थम् असमये अज्ञाने वा लघुशङ्काया आगमानम् अवरोधनाय कपित्थस्यावरणं चूर्णरूपेण स्वीक्रियते। योगचिन्तामणौ उच्यते –

शशिकुङ्ग हिमोज्ज्वल शंखनिभं परिपक्व कपित्थ रूजापहरणम्।

युवतीकरनिर्मल निर्मचुतं, पिब मानस सर्वरूजापहरणम्।।

एवं परिपक्वकपित्थः रोगनाशकः भवति।

परिचयः –

कपित्थवृक्षः 30/40Feet पर्यन्तं भवति। तस्य शाखा कठिना, कंटकयुक्ता च भवति। ग्रीष्मऋतौ तस्मिन् वृक्षे पुष्पाणि आयान्ति। एतस्य फलं बिल्वफलमिव वृत्ताकारं भवति।

सोमः

अथर्ववेदे सोमः प्रसन्नधा, शक्तिवर्धकञ्च रूपेण वर्णनं परिलक्ष्यते। अन्यत्र सोमस्य प्रयोगः विषनाशकरूपेण प्रयुज्यते। तथाहि –

अरे अभूद्विषमरौद्विषे विषमग्रागपि। अग्निर्विषमहेर्निरधात्सोमो निरणयीत।

दंष्टारमन्वगाद्विषमहिरमृत।।[72]

सोमौषधि विषं दूरीकरोति। सर्पदंशनेन यत् विषमागच्छति तदपि दूरीकरोति।

परिचयः –

सोमलतायामस्यां पञ्चदशपत्राणि भवन्ति। तानि शुक्लपक्षे एकैकं नीचैः पतन्ति तथा पूर्णिमायां संपूर्णं पतनं परिलक्ष्यते। चन्द्रे एतस्याः लतायाः स्नेहाधिक्यकारणात् सोम इति नामकरणम्।

---

[71] **अथर्ववेदः**. 4-4-1

[72] **अथर्ववेदः**. 10-4-26

अजश्रृङ्गी (मेढासिंगी)

अथर्ववेदमन्त्रेषु एतस्यापि औषधेः नाम दरीदृश्यते। तथाहि –

त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वाश्चातयामहे।

अजश्रृङ्गज रक्ष सर्वान् गन्धेन नाशय।। [73]

हे अजश्रृङ्गी औषधे ! त्वं राक्षसान् दूरीकृत्य सर्वान् स्वगन्धेन नाशय इति।

परिचयः

वृक्षस्तावत् बृहत् भवति। रक्तवर्णं पुष्पं, फलञ्च वृत्ताकारम्। एतस्य वृक्षः प्रायः पर्वतेषु न्यूनत्वं परिलक्ष्यते।

वरुणः (वरना)

वरुणः रोगनिवारकवनौषधिरूपेण अथर्ववेदे इत्थमायाति। तथाहि –

वारिदं वारयतैः वरणावत्यामधि।

तत्रामृतस्यासिक्तं तेन ते वारये विषम्।।[74]

वरुणनामौषधिः (रसः) जलविषं दूरीकरोति इति मन्त्रस्यार्थः। वरणवनस्पतिः राजजक्ष्मारोगं दूरीकरोति ।

परिचयः –

वृक्षोऽयं 24/30Feet पर्यन्तं, वनेषु उत्पद्यते। एतस्य वृक्षस्य चर्म हरित् इव पत्रं च बिल्वपत्रमिव त्रिपत्रकं भवति।

प्रक्री (प्रक्रीर्य)

पर्वस्तैस्तवा पर्यक्रीणन् दूर्शेभिरजिनैरुत।

प्रकीरसि त्वमोषाधेऽभ्रिखाते न रूरुपः।। [75]

---

[73] **अथर्ववेदः. 4-37-2**

[74] **अथर्ववेदः 4-7-1**

[75] **अथर्ववेदः. 4-7-6**

अथर्ववेदे प्रक्री पदस्य प्रयोगः मूर्च्छानाशाय कृतमवलोक्यते।

गुल्गुलुः (गुग्गुलु)

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैतं शपथो अश्नुते।

यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते।।[76]

अर्थात् यः पुरुषः गुग्गुलु इत्यौषधेः गन्ध अश्नुते सः यक्ष्मारोगेण पीडितो न भवति। तथा तं कस्यापि अभिशापं न स्पृशति।

परिचयः –

अयं कंटकयुक्तः शाखाबाहुल्येन 4/6 Feet पर्यन्तं वृक्षरूपेण जायते। पुष्पं रक्तवर्णं, लघु, पञ्चदलयुक्तञ्च भवति।

कुष्ठः (कुठः)

अधिकशक्तिदा, तक्मज्वररोगनाशकरूपेण कुष्ट इत्यौषधेः प्रयोगः अथर्ववेदे परिलक्ष्यते। तथाहि –

यो गिरिस्वजायथा वीरुधां बलवत्तमः।

कुष्ठे हि तक्मनाशन तक्मानं नाशयन्तितः।।[77]

अर्थात् हे शमी औषधे ! तव आनन्ददायकरसः विशेषरूपेण केशान् वर्धयति। पुरुषान् आनन्दञ्च जनयति।

परिचयः –

वृक्षोऽयं काण्टकयुक्तः, रूक्षशाखायुक्तः भवति। शैत्यकाले एतस्य पुष्पं वृष्टिकाले च फलमागच्छति।

पिप्पली

पिप्पली क्षिप्त भेषज्यू तातिविद्वभेषजी।

तां देवाः समकल्पयन्तियं जीवितवा अलम् ।।[78]

---

[76] अ.वे. 19-38-1

[77] अथर्ववेदः. 6-30-2

[78] अथर्ववेदः. 6-109-1

पिप्पली इति उन्मादरोगस्यौषधि भवति। अमृतमन्थनसमये देवाः एतस्य निर्माणं कृतवन्तः। पिप्पली चतुर्धा विभज्यते। तद्यथा – 1) पिप्पली, 2)गजपिप्पली, 3)सैहंली, 4)वनपिप्पली इति। सम्प्रति तु पिप्पलीद्वयं परिलक्ष्यते।

जीवन्ती

अथर्ववेदे जीवन्ती इत्यौषधेः प्रयोगः विशषरोगनिवारणाय न कृतम् अपि तु जीवनदायिनी उत जीवनरक्षाकर्त्री औषधिरूपेणोक्तं वर्तते। तथाहि –

जीवलां नद्यारिषां जीवन्तीमोषधीहम्।

त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टातये।।[79]

दर्भः (कुशः)

रोगनाशकोषधिरूपेण अथर्ववदमन्त्रेषु बारमेकं दर्भ इति पदमायाति। तथाहि –

दर्भः शोचिस्तरुणकमश्वस्य वारः पुरुषस्य वारः।

रथस्य बन्धुरम्।।[80]

अथर्ववेदे दर्भः कोपनाशकोषधिरूपेणोच्यते।

अयं दर्भो विमन्युकः स्वाय चारणाय च।

मन्योर्विमन्युकस्यायं मन्युशमनमुच्यते।।[81]

रोहणी (मांसरोहिणी)

रोहण्यसि रोहण्यस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी।

रोहयेदमरुन्धति।।[82]

रोहणी इत्यौषधि शरीरे मांसं वर्धयति। भङ्गम् अस्थिखण्डमपि योजयति।

मण्डूकी (मण्डुकपर्णी)

---

[79] **अथर्ववेदः**. 8-2-6

[80] **अथर्ववेदः**. 10-4-2

[81] **अ.वे.** 6-43-1

[82] **अथर्ववेदः**.4-12-1

ओषधिरयं स्वीकृत्य कश्चन मन्त्रः अथर्ववेदे गीयते। तथाहि –

शं ते नीहारो भवतु शं ते प्रुष्वाव शीयताम्।

शीतिके शीतिकावति ह्रदिके ह्लादिका वति।

मण्डूक्य अप्सु शं भुव इमं स्व अग्निं शमय।।[83]

अयमौषधिः शैत्यगुणयुक्तः, प्रसन्नदा अग्निशमकश्चाति इति अथर्ववेदे मन्त्ररूपेण प्रार्थ्यते।

एवञ्च अनेकौषधीनां विषये अथर्ववेदे नैकेषु मन्त्रेषु निरूपणं परलक्ष्यते । तेषामौषधीनां नानारोगनिवारणाय यदि प्रयोगः विधीयते तेन रोगोपशमस्तु अवश्यं भविष्तीति वक्तुं शक्यते ।

उपसंहारः

एतावता अथर्ववेदस्यौषधिषु विहङ्गमदृष्टिः विहिता। विविधरोगाणां प्रशमनाय अथर्ववेद एव मूलस्त्रोतभूत इति निश्चप्रचं वक्तुं शक्यम्। यतो हि अथर्ववेदे न केवलं वनस्पतीनां विषये चर्चा अपि तु अन्यरोगनिवारकपदार्थानां शल्यक्रिया, मनोवैज्ञानिकोपचारातयोऽपि सुतरां सुस्पष्टमेव। सम्प्रति तमाधारीकृत्य यद्यपि कश्चन प्रक्रियाः प्रवर्तन्ते तथापि अथर्ववेद एव सर्वेषामौषधिविशेषज्ञापनाय मूलमिति निश्चप्रचम्। इति शम् ।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. ऋक्सूक्तसंग्रहः, व्याख्याकारः डा० हरिदत्त शास्त्री, प्रकाशक-साहित्य भंडार – सुभाष बाजार- मेरठ-2, संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण
2. शब्दकल्पद्रुमः.राधाकान्त देव बाहादुर,ओरिएंटल बुक सेन्टर ,दिल्ली, 2002
3. ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेसगोरखपुर, संवत् 2068
4. https://hi.wikipedia.org/wiki , 10.06.2016

[83] **अथर्ववेदः**. 18-3-60

अथर्ववेदे प्रकृतेः स्वरूपम्

निर्मलराउलः

कूटशब्दाः वेद, प्रमाणम्, सूक्तयः, जलम्

शोधसारः

वेद इति शब्दस्यार्थः विद् ज्ञाने, विद् सत्तायाम्, विद् विचारणे , विद् लाभे, आदिभिः विभिन्नगणीयैः धातुभिः हलश्च इति सूत्रेण घञ् प्रत्यये कृते साध्यते। तेन च विदन्ति जानन्ति, विदन्ते भवन्ति, विन्दन्ते लभन्ते, विन्दन्ति विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सर्वाः विद्याः यैः येषु वा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः इति स्वामीदयानन्देन ऋग्वेदभाष्यभूमिकायामुक्तम्। "वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" इति न्यायेन यद्यपि वेदेषु धर्मतत्त्वानि मूलरूपेण प्रतिपादितानि सन्ति। तथापि सन्त्यनेके विषयाः येन वेदस्य सर्वोत्कृष्टग्रन्थरत्नत्वं प्रतिपादयितुं शक्यते। प्रत्यक्षेण अनुमानेन वा प्रमाणेन यस्य स्वरूपं वक्तुं नैव शक्यते स एव वेद इति निरूपितं वर्तते।उक्तं यथा –

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तुपायो न विद्यते।

एनं विदन्ति वेदेन तस्मान् वेदस्य वेदता।।

==========

ऋक्-यजु-साम-अथर्वनाम्ना यद्यपि सन्ति चत्वारः वेदाः तत्र सर्वत्रापि अग्नि-सूर्य-चन्द्र-वरुणादीनां देवानां स्तूतयः, धर्ममूलानि तत्त्वानि, पूजाविधयः तथा च प्रकृतेः स्वरूपं तस्य संरक्षणविषये च अनेकाः सूक्तयः वर्तन्ते।

शोधपत्रस्य उद्देश्यम्

आधुनिकाः वयमिदानीं सततं ज्ञाताज्ञाताद्वा प्रकृतिं नाशयितुं प्रयत्नं कुर्मः। तस्य फलं तु क्वचित् कालान्तरे अस्माभिरेव प्राप्यते। यदि प्रकृतिः अशान्ता नष्टा च भवति, तर्हि तस्य कुपरिणामः अस्माभिरेव अनुभूयते। अतः अस्तीदानीं समयः तस्य प्रकृतेः स्वरूपं संरक्षणं च कथं कर्तव्यमिति वेदे यथा निर्दिष्टं तस्योपरि ध्यानं दत्त्वा तस्य संरक्षणाय प्रयत्नः कर्तव्यः। अतः अन्ताराष्ट्रीयसंगोष्ठ्यामस्याम् अथर्ववेदे निरूपितानां प्रकृतिस्वरूपाणां विवेचनं कर्तुमेव शोधपत्रेऽस्मिन् कश्चन प्रयासः विहितः।

प्रकृतेः स्वरूपं व्युत्पत्ति च –

प्र- इति उपसर्गपूर्वकं कृ धातुनां क्तिन् प्रत्यये प्रकृतिरिति शब्दस्य निष्पत्तिः जायते। शब्दस्यास्य व्युत्पत्तिः भवति प्रकर्षेण करोति – कार्यमुत्पादयति इति प्रकृतिः अनया व्युत्पत्त्या सृष्टेः जगतः व सम्पादिका प्रकृतिरिति ज्ञायते। जगत्यस्मिन् अस्माकं सर्वेषु अपि भागेषु यानि यानि वन-वृक्ष-लता-वायु-पर्वत-सागर- नदी-सूर्यादीनि सन्ति तत् सर्वमपि प्रकृतिरित उच्यते। सांख्यदर्शने उक्तं- **सत्त्व-रज-तमसाम् साम्यावस्था प्रकृतिः** ।अथर्ववेदे प्रकृतेः विशेषमहत्वं दत्वा उक्तं यत् प्रकृतिः अस्य जगतः माता भवति पुरुषस्तु पिता। प्रकृतिपुरुषस्तु सर्वेषामुत्पत्तेः कारणं भवति त्रिगुणात्मकसत्त्वरजतमसः प्रकृतितः समुपत्तितः जगत् इदं सुखात्मक- दुःखमात्मकञ्च भवति। तस्य प्रकृतेः संरक्षणमिदानीमस्माकमुत्तरदायित्वमिति अथर्ववेदे निर्दिशति।

अथर्ववेदे प्रकृतेः स्वरूपं वर्णनानि च –

अथर्ववेदे बहूनामौषधिविशेषाणां वर्णनानि बहुत्र सन्ति अपि च बहुषु प्रपाठकेषु प्रकृतेः स्वरूपं महत्वञ्च निरूपितं वर्तते। तत्र अथर्ववेदे वन-पर्वत-सूर्य-भूमि-नदी-चन्द्रादीनां वैशिष्ट्यं निरूपणं वर्तते। तत्र अथर्ववेदे प्रथमकाण्डे द्वितीयप्रपाठके षष्ठी अनुवाके त्रयत्रिंशत् सूक्ते प्रकृतेः एकस्य स्वरूपस्य जलस्य वैशिष्ट्यं समुपवर्णयन् निगदितं यत् – सूर्वणमिव पवित्र निर्मल च जलं येन अग्नि सूर्योः समुच्पन्नौ । यत् च जलम् अग्निं शान्तकरणे अधारयत्। तदैव जलम् अस्माकं शूभदायकं सुखदायकञ्च भवेत् –

हिरण्यवर्णाः शूचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः।

या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु।।

(अ.वे. का.-1, प्रप.2, अनु.6, म.1)

प्रसङ्गेऽस्मिन् जलरूपस्य पर्यावरणस्य प्रकृतेः वा वैशिष्ट्यं ज्ञातुं शक्यते। वयमिदानीं तादृशं जलम् अनेकैः कारणैः प्रदूषणं कूर्मः। येन कालान्तरे तस्य कुफलम् अस्माभिरेव प्राप्यते। अथर्ववेदे द्वादशकाण्डे भूमिसूक्तमस्ति तत्र द्वादश काण्डे षड्विंशप्रपाठके द्वितीयमन्त्रे पृथिवीरूपायाः प्रकृतेः वैशिष्ट्यं वर्णितम्। या पृथिवी अस्माकं माता इव अस्मान् धारयति पालयति च तस्याः विनाशाय आधुनिकमानवः बहुधा प्रयासं करोति। परन्तु तस्या पृथिव्याः संरक्षणमपि अस्माभिः कर्तव्यमिति अथर्ववेदः निर्दिशति। यस्यां पृथिव्यां अनेके औषधयः नैकाः सूक्तयश्च सन्ति मानवानां रक्षणे हेतुभूता अस्ति सा पृथिवी अस्मान् राध्यतामित प्रार्थना वर्तते अथर्ववेदे भूमिसूक्ते। यत्र पृथिव्यां समुद्रः आपः अन्नं जीवाः जीवन्ति सा अस्मान् रक्षतु इति अथर्ववेदे भूमिसूक्ते प्रार्थितमस्ति उक्तं यथा –

असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।

नानावीर्या औषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः।

यस्यां समुद्र उत् सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।

यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु।

यदि प्रकृतिः पर्यावरणं वा समीचीना भवति तर्हि समुचितसमये ग्रीष्मः, वर्षा, शरत, हेमन्तस शिशिरादीनामनुभवं कर्तुं शक्यते। एते षट् ऋतयः अपि प्रकृतौ अन्तर्भवति। एतेषां षट् ऋतूणां विषयेऽपि अथर्ववेदे द्वादशकाण्डे भूमिसूक्ते निरूपितं वर्तते। एते षट् ऋतयः अस्मान् रक्षन्तु इति अथर्ववेदे प्रार्थना विद्यते। तथा हि --

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः नो

ऋतुवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि दुहाताम्।।

(अ.वे. का.12,सू.1., म.36)

पृथिव्यां पर्वताः हिमवन्नगाः पयधारानदी च वर्तन्ते ते सर्वेऽपि प्रकृतौ अन्तर्भवन्ति। पृथिव्यां नदीतः यत् जलं बहति तत् सर्वे पिवन्ति। तत्र अथर्ववेदे पृथिवीं मातृरूपेण मनुष्याश्च पुत्ररूपेण परिकल्प्य हे मातः ! सपुत्रस्य कृते पयः ददातु इति प्रार्थितं वर्तते। अत्र जलरूपस्या प्रकृतेः स्वरूपं महत्वं च दृष्टं शक्यते। अपि च पर्वताऽपि अस्मान् रक्षन्तु इति प्रार्थना अथर्ववेदे भूमिसूक्ते द्वादश काण्डे भूमिसूक्ते वर्तते।

यस्यामापः परिचाराः समानीरहोरात्रे अप्रमादंक्षरन्ति।

सा नो भूमिर्भरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा।।

(अ.वे.का.12,प्र.26,म.9)

सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः।

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु।

बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।

अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम्।

(अ.वे.का.12, प्र.26, म.10-11)

नद्यः अपि प्रकृतौ अन्तर्भवन्ति। अथर्ववेदे केषुचित् प्रपाठकेषु नदीनां विषयेऽपि निरूपणं कृतं वर्तते। यास्कमुनि निरुक्ते नदी नद इति शब्देन उच्यते। यतोहि नदशब्दस्य अर्थ भवति शब्दः तत्र निरुक्ते उक्तं –

नदना भवन्ति शब्दवत्यः

अथर्ववेदे विंशकाण्डे वायुदेवस्य महत्वं वर्णितं यः वायुः प्रकृतेः प्रमुखं स्वरूपं भवति। वायुं विना एकं क्षणमपि प्राणिनः जीवितुं नैव शक्नुवन्ति अनेकैः कारणैः स च वायु इदानीं प्रदूषितं भवति येन अनेके रोगाः जायन्ते तस्य वायोः संरक्षणमपि अस्माभिः कर्तव्यं इति अथर्ववेद निर्दिशति। तत्र विंशकाण्डे षट् त्रिंशत् प्रपाठके प्रथम मन्त्र द्वये उक्तं यथा-

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे। स पाहि मध्वो अन्धसः

मरूतो यस्य हि क्षये पाथादिवौ विमहसः । स सुगोपातमो जनः

(अ.वे.का.20, प्र.36,म.1-2)

उपसंहारः

एवञ्च विचारयते चेत् इदानीं अस्माकं मानवजीवने पर्यावरणं प्रकृतिवा किमपि नुतनं वैशिष्ट्यमुपपादयति तस्याः प्रकृतेः विषये समीचीन ज्ञात्वा तस्याः संरक्षणाय विशेष कश्चन यत्नः विधातव्यः इति अथर्ववेदस्य वचनं तदेव अस्माभिः सर्वैरपि परिपालनीयम्।।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. ऋक्सूक्तसंग्रहः, व्याख्याकारः डा० हरिदत्त शास्त्री, प्रकाशक-साहित्य भंडार – सुभाष बाजार- मेरठ-2, संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण
2. शब्दकल्पद्रुमः.राधाकान्त देव बाहादुर,ओरिएंटल् बुक् सेन्टर ,दिल्ली, 2002
3. ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेसगोरखपुर, संवत् 2068
4. https://hi.wikipedia.org/wiki , 10.06.2016

वास्तुमालादिशा गृहे ग्राह्याग्राह्यवृक्षाणां समीक्षणम्

गीताञ्जलिनायक

कूटशब्दाः **वास्तु, वाटिका, गृहम्, वस्तु, मूर्तिनिर्माणम्**

शोधसारः

जगत्यस्मिन् सुखमवाप्तुं सततं चेष्टन्ते मानवाः । तदर्थं प्रमुखम् आवश्यकतात्रयं सदैवापेक्षते। भोजनं, वस्त्रं,निवासस्थानञ्च। प्रथमतः मानवानां भोजनमेव प्रधाना समस्या आसीत्। कालान्तरे परमावश्यकताद्वयमनुसृत्य मानवः स्वबुद्धेः प्रयोगः कृतवान्। तदभावे बहुदुःखमनुभूयते स्म। परन्तु पूर्वाचार्याः आवाससमस्यां व्यवस्थापयितुं वास्तुशास्त्रं विरचयामासुः। तेन सम्प्रति ज्ञानिनः तच्छास्त्रविषयकं ज्ञानं लब्ध्वा आवासभवनस्य चयने निर्माणे च स्वकौशलं प्रदर्शयन्ति। मानवनिवासाय यत् भवनं तत् इतस्ततः गम्यमानः पदार्थः नास्ति। भवननिर्माणकाले भूखण्डे वास्तुदोषं ज्ञात्वा तन्निवारणं कारयित्वा शुभे लग्ने मुहूर्ते च गृहनिर्माणकार्यं करणीयम् । किमपि विचारं विना वास्तुसिद्धान्तान् परिपालनं न कृत्वा यदि भवननिर्माणं क्रियते तर्हि कालान्तरे सर्वेषु कर्येषु असाफल्यं लभते, दुःखञ्चानुभूयते। क्वचित् मानवाः उचितानुचितकर्तव्याकर्तव्यग्राह्याग्राह्यविवेचयितुं न शक्नुवन्ति। येन ते स्वजीवने साफल्यं न प्राप्नुवन्ति। वास्तुशास्त्रध्यायनेन परिशीलनेन च ते विषयाः सहजबोध्याः भवन्ति। गृहनिर्माणावसरे वास्तुशास्त्रस्य केचन नियमाः मनसि अवश्यं ध्यातव्याः। तदत्र किञ्चिन्निरूप्यते ।

==========

यत् वास्तुविषयकं ज्ञानं कारयति तत् वास्तुशास्त्रमित्युच्यते। 'वास्तु' इति शब्दः वस्तुतः आगतः। वास्तुशास्त्रस्य प्रथमप्रवर्तकः देवतानां वास्तुविद् विश्वकर्मा आसीत्। तेनैव देवपुर्यां विशिष्टभवनानां निर्माणं सर्वादौ कृतम् । सर्वप्राचीने ऋग्वेदे वास्तुशब्दस्य प्रप्रथमं प्रयोगः दृश्यते। तदानीं वास्तुशास्त्रस्योद्भवः अभूत्। वेदेषु "वास्तोस्पतिः" इति शब्दस्य प्रयोगः परिलक्ष्यते। भारतीयवास्तुशास्त्रस्योद्भवः वैदिककालादेव इति। चतुर्षु उपवेदेषु स्थापत्योऽपि वर्तते। स्थापत्यस्यापरं नाम वास्तु इति । वेदेषु "वास्तोस्पतिः" देवतारूपेण त्वष्टा च कुशलनिर्माणकर्तारूपेण उल्लेखः लभ्यते। वेदानन्तरं रामायणे,महाभारते,अष्टाध्याय्यां, अर्थशास्त्रे,पुराणादिषु ग्रन्थेषु तत्र तत्र वास्तुविषयकं ज्ञानं लभ्यते। वास्तुशास्त्रे परम्पराद्वयम् आधिक्येन लोकप्रियः सञ्जातः । तद्यथा-

१. उत्तरीवास्तु परम्परा। २. दक्षिणीवास्तु परम्परा।

१.उत्तरीवास्तु परम्परा

अस्याः परम्परायाः प्रमुखवास्तुशास्त्रीयग्रन्थाः इमे भवन्ति। यथा- सूत्रधारमण्डनम्, विश्वकर्मप्रकाश, समराङ्गणसूत्रधारः, वास्तुरत्नावल्यादयः।

२.दक्षिणीवास्तु परम्परा

परम्परायामस्यां बहवः वास्तुशास्त्रीयाः ग्रन्थाः परिलक्ष्यन्ते। एतेषां ग्रन्थानां ग्रहणमधिकतया कुर्वन्ति जनाः। तेषां नामानि यथा - विश्वकर्मीयशिल्पः,मयमतम्,मानसारः,काश्यपशिल्पः, अगस्त्यसकलाधिकारः,

शिल्पसंग्रहः, चित्रलक्षणादयः ।

वास्तुशास्त्रस्य क्षेत्रम्

वास्तुशब्दोऽयं ग्रामः,पुरः,दुर्गः,आवासभवनं,निवेश्यभूमिः आदीनां वाचकः । न केवलमेतत् अपि तु वास्तुशब्देनानेन गृहभवनं , अत्युच्चप्रासादः,मन्दिराणि , देवालयाः,कूपः,पुष्करिणी, मूर्तिनिर्माणं , स्थापत्यकला, विविधमण्डपः,यज्ञशाला, सभागृहः,उद्यानम्, मञ्चादीनां निर्माणम् इत्यादीनि वास्तुशास्त्रस्य क्षेत्ररूपेण गृह्यन्ते। अस्य क्षेत्रं व्यापको भवति। ज्योतिषशास्त्रेणास्य विशिष्टसम्बन्धोऽस्ति। वास्तुनिर्माणे शुभाशुभमुहूर्तज्ञानयोः ज्योतिषशास्त्रस्य साहाय्यमपेक्षते।

वास्तुशास्त्रस्य साहित्यम्

शास्त्रमिदं व्यापकं भवति। वास्तुशास्त्रविषयकं ग्रन्थानामपि विस्तारः सुतरां परिलक्ष्यते एव। शास्त्रीय ग्रन्थान् अतिरिच्य वैदिकसाहित्ये, रामायणे, महाभारते, अर्थशास्त्रे, तन्त्रशास्त्रे, आगमे, पुराणे, बृहत्सहिंतायाम् च वास्तुविषयकज्ञानं परुपूर्णं वर्तते। शास्त्रस्यास्य प्रमुखाः ग्रन्थाः इमे भवन्ति। सत्रधारमण्डनं, विश्वकर्मप्रकाशः, मनसारः, मयमतं, शिल्पसंग्रहः, चित्रलक्षणः, वास्तुसन्देशः, बृहत्संहिता, राजवल्लभः, मूहुर्तमार्त्तण्डादयः। एतेषु निर्दिष्टेषु ग्रन्थेषु विशिष्टभूमेः चयनम्, गृहनिर्माणस्य- मूहुर्तविचारः, भूमेः विशिष्टानि लक्षणानि, भवननिर्माणाय स्थानं दिक् चयनं च, भूमेः शल्यशोधनविषयः, शिलान्यास विचारः, वास्तोः माङ्गलिकचिह्नादयः बहवः विषयाः सप्रमाणं चर्चिताः समवलोक्यन्ते।

वास्तुशब्दस्य प्रप्रथमप्रयोगः

वास्तु इति शब्दस्यास्य प्रप्रथमं ऋग्वेदे द्रष्टुं शक्यते। तत्र पञ्चममण्डले एकस्मिन् सुक्ते प्रार्थनावसरे '**वास्तोस्पति**' इति शब्दस्य प्रयोगः दृश्यते। तथाहि-

अभि वो अर्चे पोष्यावतो नृन् वास्तोष्पतिं त्वष्टारं ररणः।
धन्या सजोषा धिषणा नमोभिर्वनस्पतीरोषधी राय एषे।।[१]

कालान्तरे शनैः शनैः वास्तुशास्त्रस्य विस्तारः जातः। यः कोऽपि वा पदार्थः भवतु तस्य निर्माणं पञ्चमहाभूतेष्वेव सम्भवति। वायुः, अग्निः, जलं, पृथ्वीः, आकाशः आदीनि पञ्चमहाभूतानि। एतानि पञ्चमहाभूतानि प्रकृत्याः मूले सन्निहितानि भवन्तीति कारणात् सर्वाण्यपि कर्माणि प्रकृत्या सम्पाद्यते। तस्मात् पञ्चमहाभूतात् लाभप्राप्तुकामः वास्तुसिद्धान्तानां निर्माणं कृतमिति बहूनामभिप्रायः।

वास्तुमालादिशा गृहसमीपे ग्राह्यवृक्षाः

अत्यधिकशोभाजनयितुमेव जनाः स्वगृहसमीपे वृक्षलतापुष्पादीनां चयनं कृत्वा सज्जयन्ति। परन्तु ततः प्राक् अयं चिन्तनीयः विषयो भवति यत् ते सर्वेऽपि वृक्षाः सर्वाः लता ा गृहसमीपे न रोपणीयाः। यतोहि तेषु वृक्षेषु केचन शुभप्रदाः अन्ये च अशुभसूचकाः भवन्ति। अतः गृहसमीपे ग्राह्याग्राह्यवृक्षाणां विषये अवश्यं ज्ञातव्यमिति धिया तादृशं शीर्षकं स्वीकृत्य चिन्तनमेकं कर्तुमिष्यते। अत्र केषाञ्चन ग्राह्यवृक्षाणां विवेचनं क्रियते।

गृहसमीपे ग्राह्यवृक्षाः

वास्तुप्रदीपे पुस्तके गृहसमीपे शुभप्रदायकानां केषाञ्चन वृक्षाणां वर्णनं कृतमवलोक्यते। पुन्नागः, फलिनीवृक्षः, निम्बः, दाडिमः, अशोकः, नागकेशरः, जपाकुसुमः, जयन्ती, चन्दनवृक्षः, वचः, अपराजिता,

विल्ववृक्षः, आम्रवृक्षः, भृङ्गः (दालचिनी) नागरः, नारिकेलः एते वृक्षाः गृहस्य समीपे सर्वासु दिक्षु शुभदायकाः भवन्ति । उक्तं यथा वास्तुमालायम् -

पुन्नागफलिनी निम्बदाडिमाशोक जातिकाः ।।
नागकेशरः सपुष्पं जपाकुसुम केसरे ।
जयन्ती चन्दनं प्रोक्तं वचा चैवापराजिता ।।
मधुविल्वाम्रभृङ्गाश्च नागरं ककुपादिका ।
यत्र तत्र स्थिताश्चैते नारिकेलादयः शुभाः ।।[३]

यः पुरुषः गृहसमीपे एकः अश्वत्थवृक्षः, निम्बवृक्षः, वटवृक्ष । रोपयति तथा चिंचिणीकस्य दश वृक्षाः, कपित्थविल्वमालकस्य त्रयः वृक्षाः, आम्रस्य च पञ्च वृक्षाः रोपयति तस्य नरकगतिं न भवति। अतः एते वृक्षाः गृहसमीपे शुभप्रदायकाः भवन्ति। उक्तं यथा -

अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दश चिंचिणीकम् ।
कपित्थविल्वामलकत्रयञ्च पंचाम्रवापी नरकं न पश्येत् ।।[३]

गृहस्य ईशानकोणे आमलकवृक्षः, नैऋत्ये चिञ्चिणीद्रुमः, अग्निकोणे दाडिमं, वायव्यकोणे विल्ववृक्षः रोपयेत् । एवमेव उत्तरस्यां दिशि प्लक्षः,पूर्वस्यां दिशि वटवृक्षः, दक्षिणदिशि उदुम्बरवृक्षः, तथा पि ामस्यां दिशि अश्वत्थवृक्षः, मध्यभागे च विविधप्रकारस्य आम्रवृक्षाः रोपणे शुभं भवति । उक्तं यथा-

ईशाने रोपयेद्धात्रीं नैऋत्ये चिंचिणीद्रुमान् ।
आग्नेयां दाडिमं चैव वायव्ये विल्ववृक्षकम् ।।
प्लक्षोत्तरे पूर्ववटं प्रशस्तं ह्युदुम्बरं दक्षिणभागके च ।
अश्वत्थवृक्षं दिशिवारुणस्यां मध्ये तथाम्रान्विविधप्रकारान् ।।[४]

गृहसमीपे वाटिका भवेत् । तत्र वाटिकायां दक्षिणनैऋत्ययोर्मध्ये जम्बुककदम्बवृक्षौ भवेताम् । एवमेव ईशानपूर्वकोणे आम्रपनस । द्वौ वृक्षौ, वाटिकायाः बहिः पूर्वस्यां दिशि वंशवृक्षः,उत्तरस्यां दिशि शमीवृक्षः, पि ामायां खदिरः, दक्षिणे वकुलवृक्षरोपणेन बहु समीचीनफलं लभ्यते। ते वृक्षाः तेषु तेषु स्थानेषु अधिकशुभदायकाः भवन्ति। अनेन अनिष्टः विनश्यति। उक्तं हि -

याम्यनैऋत्ययोर्मध्ये तथा जम्बुकदम्बकौ ।
पनसश्च तथाम्रश्च प्रशस्तौ शम्भुपूर्वयोः ।।
वाटिकायाः बहिः पूर्वे रोपयेद्वंशवृक्षकम् ।
उत्तरे च शमी वाह्ये पि ामे खदिरो बहिः ।।
दक्षिणे वकुलो वाह्येऽरिष्टनाशाय केवलम् ।[५]

सप्त वाटिकाः भवन्ति। ताः यथा - आम्रवाटिका, अश्वत्थवाटिका, वटवाटिका, प्लक्षः, निम्बः, जम्बुकः, चिंचिणीवाटिका चेति। एतासु वाटिकासु आम्रवाटिका सर्वश्रेष्ठा भवति।

यः अग्निहोत्रं न करोति,स्त्रीपुत्रहीन । भवति तस्य सर्वमपि पापं आम्रवाटिका रोपणेन विनश्यति । मार्गे छायायुक्तवृक्षरोपणेन च स्वर्गप्राप्तिः भवति। उक्तं यथा -

आम्राणां वाटिका चैव द्वितीयाश्वत्थ वाटिका ।
तृतीया वटवृक्षाणां चतुर्थी प्लक्षवाटिका ।।
पञ्चमी निम्बवृक्षाणां षष्ठी जम्बुकवाटिका ।
चिंचिणीवृक्षसम्भूता सप्तमी परिकीर्तिता ।।

एतासां वाटिकानां च प्रशस्ता चाम्रवाटिका ।
फलदा पुण्यदा चैव पापं संहरते ध्रुवम् ।।
न तत्करोत्यग्निहोत्रं न पुत्रा योषितोद्भवाः ।
यत्करोति घनच्छायः पादपः पथिरोपितः ।।[६]

वाटिकानिर्माणस्य फलमाह वराहमुनिः। यः राजमार्गस्य समीपे कूपयुक्तसुन्दरवाटिकां निर्माति सः चतुर्युगेषु स्वर्गस्य सर्वमपि सुखं प्राप्नोति। उक्तं हि वराहेण -

यो वाटिकां राजपथः समीपे स्विष्टां तथा कूपसमन्विताञ्च ।
स्वर्गे च वासं लभते मनुष्य ातुर्युगं सर्वसुखैरुपेतः ।।[७]

गृहसमीपे द्राक्षा,पुष्पकलतामण्डपं, दाडिम ा रोप्यते चेत् शुभं भवति। गृहस्योत्तरभागे सौम्यवृक्षः, दक्षिणभागे कपित्थः,पूर्वभागे वटवृक्षः,पि ामे कोणे च अश्वत्थवृक्षः,शुभदा भवति। उक्तं यथा -

द्राक्षापुष्पकमण्डपं च तिलकान् कृष्णां वयेद्दाडिमीनिम् ।
सौम्यादेः शुभदौ कपित्थकवटावौदुम्बराश्वत्थकौ ।।[८]

एवमेव पूर्वोक्ताः वृक्षविशेषाः गृहसमीपे न दातव्या इति वास्तुशास्त्रस्य नियमः। यदि एतस्य परिपालनं न क्रियते तर्हि महती हानिः भवति। यतो हि गृहसमीपे तेषां वृक्षाणां रोपणेन फलमपि सम्यक् न भवति। अतः सम्प्रति त्याज्यवृक्षविषये आलोच्यते।

गृहसमीपे अग्राह्याः वृक्षाः

केचन अशुभप्रदायकाः वृक्षास्सन्ति येषां रोपणं गृहसमीपे न करणीयम् । वृहत्संहितायामुक्तं यत् यदि गृहसमीपे कण्टकिनः वृक्षाः सन्ति ते शुभप्रदाः न भवन्ति । ते शत्रुभयमुत्पादयन्ति । तथा च दुग्धधारिणः वृक्षाः धनं नाशयन्ति। फलिनः वृक्षाः पुत्रादीन् नाशयन्ति। तेषां वृक्षाणां काष्ठप्रयोगेऽपि तदेव फलं भवति । यदि तान् कर्तनं कर्तुं न शक्यते तर्हि तन्मध्ये पुन्नगः,अशोकः,वकुलः,पनसः,शमी,शालादीन् वृक्षान् रोपणेन अशुभफलं न भवति। उक्तं यथा वृहत्संहितायाम्

आसन्नाः कण्टकिनो रिपुभयदा क्षीरिणोऽर्थनाशाय ।
फलिनः प्रजाक्षयकरा दारूण्यपि वर्जयेदेषाम् ।।
छिन्द्याद्यदि न तरूँस्तान् तदन्तरे पूजितान् वपेदन्यान् ।
पुन्नागाशोकारिष्टवकुलपनसान्शमीशालौ।।[९]

वृहत्संहितायाम् इतोऽपि उच्यते यत् गृहसमीपे दक्षिणभागे प्लक्षवृक्षः न भवति। पि ामायां दिशि वटवृक्षः, उत्तरे उदुम्बरः,पूर्वस्यां दिशि अश्वत्थः, अशुभफलदायकाः भवन्ति। उक्तं हि -

याम्यादिष्वशुभफला जातास्तरवः प्रदक्षिणेनैते ।
उदगादिषु प्रशस्ताः प्लक्षवटोदुम्बराश्वत्थाः ।।[१०]

वास्तुराजवल्लभे त्याज्यवृक्षस्य विषये इत्थमुक्तम् । गृहसमीपे दुग्धधारीवृक्षः,कण्टकयुक्तवृक्ष ा शुभदा नास्ति । उक्तं यथा -

वृक्षा दुग्धसकण्टका ा फलिनस्त्याज्या गृहादूरतः ।।[११]

एवमेव गृहसमीपे केषाञ्चन अग्राह्यवृक्षाणां विवेचनं वास्तुशास्त्रदृष्ट्या विहितम्। तस्य परिपालनम् अस्माभिः अवश्यं करणीयमेव ।

उपसंहारः

मानवजीवनस्य परमलक्ष्यचतुष्टयं भवति धर्मार्थकाममोक्षः। तषां पुरुषार्थचतुष्टयानां प्राप्तिः तदा सम्भवति यदा मानवः परिपुष्टशरीरेण,स्थिरमनसा, निर्मलबुद्ध्या च भवति। वास्तुसिद्धान्तानुसारं गम्यते चेत् जगति सर्वमपि सुखदं भवति। भारते वास्तुतत्त्वानि धार्मिककृत्यरूपेणाङ्गीक्रियते।

यदि सूक्ष्मातिसूक्ष्मदृष्ट्या वास्तुशास्त्रस्य परिशीलनं क्रियते तर्हि तन्नियमानुवर्तिनां मानवानां सततं सुखमेव भविष्यतीति नास्ति सन्देहः । इति शम् ।।

सङ्केताक्षरसूची

१. ऋ.वे - ऋग्वेदः
२. श्लो - श्लोकः
३. वा.मा - वास्तुमालाप्रयोगः
४. पृ - पृष्ठम्
५. मि. प्र - मिश्रप्रकरणम्

पादटिप्पणीः

१. ऋ.वे-५.४१.८
२. वा.मा मिश्रप्रकरणम् श्लो १८-१९
३. वा.मा पृ-११६
४.वा.मा मि.प्र.श्लो २३-२४
५.वा.मा पृ ११७ श्लो-२५-२६
६.वा.मा पृ-११७
७. वा.मा पृ-११८
८.वा.मा श्लो ११ पृ- ११४
९.वा.मा मिश्रप्रकरणम् श्लो १३-१४
१०.वा.मा श्लो-१२ पृ-११४
११. वा.मा पृ-११३

सन्दर्भग्रन्थसूची

१. ऋग्वेदः. नाग पब्लिकेशन्स. नई दिल्ली
२. भारतीय वास्तुशास्त्र. डा.उमेशपूरी 'ज्ञानेश्वर' धरणीधर प्रकाशन. हरिद्वार, १९९६
३. बृहत वास्तुमाला प्रयोग. डा. हरिशङ्कर पाठक.भारतीय विद्या संस्थान. वारणासी.२००२
४. वास्तुकल्पलता. प्रो.डा.हरिहर त्रिवेदी. चौखम्बा कृष्णदास अकादमी.वाराणसी.२००७
५. वास्तु उद्धारधोरणी. डा. श्रीकृष्ण'जुगनु' चौखम्बा कृष्णदास अकादमी. वाराणसी. २००८

प्रस्थानत्रयी में वर्णव्यवस्था

कूट-शब्द वर्णव्यवस्था, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता

शोध-सार

भारतीय समाज में वर्णव्यवस्था से सम्बन्धित अन्धविश्वास तथा मिथ्याज्ञान समाज की प्रगतिपथ पर प्रतिबन्धक के रूप में खडा रहता है । ऐसी परिस्थिति में वेदान्तदर्शन में निहित वर्णव्यवस्था के मूलतत्त्व समाज में पथप्रदर्शक की भूमिका का निर्वहण किये हुए है। आज समाज में वर्णव्यवस्था का विकृत स्वरूप जातिप्रथा के रूप में लिया जा रहा है । जबकि जाति शब्द का प्रयोग वेद एवं प्रस्थानत्रयी में कदापि दृश्यमान नहीं होता तथा वर्णव्यवस्था का उद्देश्य सामाजिक कर्तव्यों का निर्धारण एवं श्रमविभाजन में समानीकरण था । परन्तु आज समग्र विश्व में भारतीय संस्कृति साम्प्रदायिकता के चक्र में डूब गई है । जिसे केवल विद्वज्जन प्रस्थानत्रयी (अर्थात् उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता) में उद्धृत उदाहरणों के द्वारा दूर करने में समर्थ हो सकते हैं । शोधलेख में यथासम्भव वर्णव्यवस्था सम्बन्धित तथ्यों को आलोकित किया है कि किस तरह से प्रस्थानत्रयी के उपदेशों में जातिभेद रूपक समस्या का युक्तिपूर्ण समाधान निहित है, यह ही शोधलेख का प्रमुख उद्देश्य है ।

==========

भारतीय वर्णव्यवस्था समग्र विश्व में एक आलोच्य तथा विवादास्पद विषय के रुप में प्रस्तुत की गई है । वर्णव्यवस्था के विषय विवेचन में सामाजिक परम्पराओं एवं व्यवहार प्रयोगों पर ही सर्वाधिक प्रकाश डाला जाता है । वैदिककालीन समाज में कर्म तथा विचारधारा के आधार पर ही वर्णव्यवस्था का प्रचलन प्रारम्भ हुआ था । परन्तु परवर्तीकाल में यही वर्णव्यवस्था समाज में जातिगत प्रथा के स्वरुप में परिवर्तित होकर विभेद तथा असमानता उत्पन्न कर रही है।

वर्णव्यवस्था के विषय में चर्चा का उत्स ऋग्वेद[84] है । वर्णव्यवस्था सनातन धर्म का प्रमुख अङ्ग है । एतदव्यतीत भगवद्गीता पर रचित शङ्कराचार्य के गीताभाष्य, ब्रह्मसूत्रादि में भी वर्णाश्रम के विषय में आलोचना की गयी है। वर्णव्यवस्था के मूलतत्त्व समाज में साम्यता एवं सहयोगिता बनाए रखतें हैं, साम्प्रतिक परिस्थति में जनसाधारण के चिन्तन से वर्हिभूत है । इस लेख में भगवद्गीता, उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्र में आलोचित वर्णव्यवस्था की स्पष्ट धारणा प्रदान करने का तथा समाज में इससे जुडे मिथ्यापवाद को यथासम्भव दूर करने का प्रयास किया गया है।

---

[84] पुरुषसूक्त में वर्णित।

मुख्यविषय – प्रस्थानत्रयी में वर्णित वर्णव्यवस्था साधारण जनता के मन में कौतूहल उद्रेककारी होती है । प्रस्तुत शोधपत्र में क्रमशः उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता से प्राप्त विषयों की समालोचना प्राप्त हुई है । यथा –

प्रमुख उपनिषद् में वर्णव्यवस्था – वेदों के सार स्वरुप कथित उपनिषदों में वर्णव्यवस्था सम्यग्र रूप से आलोचित है । जो सर्वप्रथम पुरुषसूक्त में उल्लिखित है । यथा –

ब्राह्मणोरस्य मुखमासीद्बाहु राजन्यः कृतः।

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥1

अर्थात् पुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहुद्वय से राजा (क्षत्रिय), उरुद्वय वैश्य तथा चरणद्वय शूद्र के रुप में सृष्ट हुआ । उपरोक्त मन्त्र से स्पष्टतया ज्ञात होता है कि मेधा के उद्गातृ मुख स्वरुप ब्राह्मण, बल, वीर्यादि शक्तिसम्पन्न बाहुद्वयस्वरूप क्षत्रिय, कृषि ,धनसम्पद, विपणन क्षेत्र में पारङ्गमी उरू स्वरुप वैश्य तथा विश्वसृष्टि के आश्रय तथा सेवा, आत्मत्याग का प्रतीक चरणद्वय के स्वरुप शूद्र वर्ण का विभाजन होता है। इससे केवल कर्म के आधार पर ही वर्णव्यवस्था सिद्ध होती है ।

मानवीय विवर्तन के प्रसङ्ग में यह स्पष्ट होता है कि विवर्तन सत्त्वस, रजस, तमस् गुणों में विकासीकरण के द्वारा होता है । इसका सबसे उत्कृष्ट उदाहरण बृहदारण्यकोपनिषद् में उल्लिखित है । यथा –

ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव----------सर्वं पुष्यति यदिदं किंच।2

अर्थात् इस सम्पूर्ण जगत में एकमात्र ब्रह्म ही स्थित था तथा उस समय वर्णभेद नाम का कोई विषय अस्तित्व में नहीं था । अग्नि के सृष्टिकर्ता ब्राह्मण से क्षत्रियादि अभिन्न थे। परन्तु ब्रह्मा क्षत्रियों के अनुष्ठान में असमर्थ थें अतः इसी कारण कर्म-कर्तव्य का निर्वहण के लिए क्षत्रिय वर्ण की उत्पत्ति की गई थी । इस प्रसङ्ग में कहा जाता है कि ब्राह्मण यद्यपि यज्ञयागादि का विधान करने के कारण श्रेष्ठपद को प्राप्त करते है, परन्तु राजसूययज्ञ के समय क्षत्रिय ब्राह्मण से प्रधान होते है । देवताओं में इन्द्र, वरुण, रुद्र, सोम, यम आदि क्षत्रियवर्ण के देवता है । इसप्रकार ब्राह्मण तथा क्षत्रिय की सृष्टि के पश्चात् धनसम्पद का उपार्जन हेतु वैश्य वर्ण की रचना हुई। अष्टवसु , एकादशरुद्र, द्वादश आदित्यादि देवता वित्तार्जनक्षम वैश्य देवताओं के रुप में गिने जाते हैं । फिर सभी वर्ण के देवताओं का पोषण तथा परिचालक के रूप में ब्रह्म ने पूषा अर्थात् शूद्र वर्ण की रचना की थी ।

तत्पश्चात् वर्णों में साम्यता और कर्म भावना को अतुट रखने के प्रयास में विराज ने (ब्रह्मन्) धर्म शब्द का व्युत्पत्ति करके वर्णों में सार्थकता प्रदान की है। यथा-

स नैव व्यभवत्च्छ्रेयोरुपमत्यसृजत..... अस्माद्येवात्मनो यद्धिकामयते तत्तत्सृजते॥3

अर्थात् ब्रह्मन् ने वर्णों कि संरचना के पश्चात् साम्यता बनाए रखने हेतु धर्म पद का व्यवहार किया । धर्म ही एकमात्र विषय है जो वर्णों में श्रेष्ठ है । इस के द्वारा दुर्बल सबल के ऊपर विजय प्राप्त करने में समर्थ होता है । अतः ब्राह्मण, क्षत्रिय,

वैश्य, शूद्रों को अपने सत्कर्म के आधार पर धर्म का पालन करना चाहिए । क्योंकि हम चतुर्वर्ण धर्म का पालन करके ब्रह्म को प्राप्त कर सकते है । ब्रह्म की प्राप्ति केवल कर्मों के समुचित विधान से ही सम्भव हो सकती है ।

बृहद.(३.८.१-१२) मन्त्रों में वाचक्नुऋषि कि पुत्री गार्गी ने याज्ञवल्क्य ऋषि से क्षत्रिय धर्म की विचार क्षमता के विषयों में प्रश्न किए थें और याज्ञवल्क्य ने उसके समुचित उत्तर में ब्रह्म से क्षत्रिय का सम्बन्ध विवेचन किया था ।

इसीप्रकार छान्दोग्योपनिषद में भी गुण तथा कर्म के आधार पर वर्णव्यवस्था का स्थापन किया गया है यह प्रमाणित है। यथा –

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते ..... चण्डालयोनिं वा॥4

अर्थात् जब जीवात्मा परलोक से मृत्युलोक में पुनरागमन करती है, तब सुकृत परिपक्व कर्म विशिष्टता के कारण उत्तम योनि को प्राप्त करती है । उत्तम योनि का विशेषार्थ है अध्यापनाध्ययन,यागयज्ञादि कर्म के कारण ब्राह्मण योनि , प्रजा रक्षा, दान, यज्ञ करना आदि कर्म से क्षत्रिय योनि, व्यापार, पशु रक्षा, व्याज लेना आदि कार्यों से वैश्य योनि में जन्म लेता है।

पुनः यह कहा जाता है कि यदि जीवात्मा परलोक से कुत्सित कर्म परिपूर्ण करके मृत्युलोक आती है, तो वो निन्दित योनि अर्थात् कुत्ता, सुकर अथवा चाण्डाल योनि को प्राप्त होता है । चाण्डाल योनि मुख्यतः वर्णसङ्कर को इंगित करता है जो कि कलियुग में बहुत मात्रा में प्राप्त होते है । साधारणतः चाण्डाल पद शूद्र और ब्राह्मण के सम्बन्ध से उत्पन्न सन्तान के लिए प्रयुक्त होता है जिसका प्रमाण **मनु.१०.१२** में दिया गया है। यथा

शूद्रदायोगवः क्षत्ता चण्डालश्चाधमोनृणाम् ।
वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसङ्कराः॥ 5

उपरोक्त मन्त्रों से सर्वथा स्पष्ट होता है कि गुण तथा कर्म की वैशिष्ट्य पर ही वर्णव्यवस्था प्रतिष्ठित थी । जो आध्यात्मिक, राजनैतिक, व्यवसायिक एवं शारीरिक शक्तियों को चार वर्णों में समान रूप से विभजित करती थी ।

ब्रह्मसूत्र में वर्णव्यवस्था – भारतीय समाज व्यवस्था में प्रचलित वर्णव्यवस्था का उद्देश्य है, समस्त मनुष्यों के लिए पुरुषार्थ(धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) से मोक्ष प्राप्ति करवाना । यदि सत्त्वस्, रजस्, तमस् गुणों के आधार पर वर्णों को ग्रहण किया जाये तो जगत का कल्याण एवं धर्म का अनुष्ठान सम्भव है । शङ्कराचार्य के ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य में स्पष्ट प्रमाणित होता है। यथा –

कृतात्ययेऽनुशयवान्दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवं च ।6

अर्थात् जीवात्मा अपने कर्मों को भोग करने हेतु चन्द्रालोक से अवरोहकाल में जीव अवशिष्ट कर्मानुसार वर्णादि योनियों में अथवा व्रीहि वा श्वानादि योनि में किस प्रकार संकलन होता है, इस विषय में आलोचना प्राप्त होती है । श्रीशङ्कराचार्य कहते है –

अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात् ।7

अर्थात् भोक्ता जिस प्रकार फल भोगने की इच्छा से व्रीहि आदि रूप जन्म लेता है, उसीप्रकार अपने सुखदुःखयुक्त कर्मों के आधार पर कुत्ता आदि जन्म लेतें हैं ।

भगवद्गीता में वर्णव्यवस्था – वर्णव्यवस्था के विषय में सर्वोत्कृष्ट उदाहरण महाभारत में कथोपकथन के माध्यम से विशद रूप से ज्ञात होता है । महाभारत के वनपर्व में युधिष्ठिर नाग की जिज्ञासावश ब्राह्मण के लक्षणों को बतलाते हैं । तब पुनः नाग प्रश्न करता है कि – धर्मराज यदि ब्राह्मण के सभी लक्षण शूद्र में होते है एवं ब्राह्मण में नहीं होते तो उपाय क्या होगा । युधिष्ठिर बताते है – ब्राह्मण के सारे लक्षण शूद्र में रहने पर वो शूद्र कथित नहीं होगा तथा ब्राह्मण के रूप में उसे अस्वीकार किया जाएगा । उपरोक्त कथोपकथन से प्राचीन भारत में गुणकर्म के आधारित वर्णव्यवस्था सूचित होती है ।
श्रीमद्भगवत्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने फलरहित कर्म का उदाहरण देकर गुण-कर्मों के विभाग से चतुर्वर्ण की संरचना की है । यथा –

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्यकर्तारमव्ययम् ।।8

अर्थात् वर्णचतुष्टय को मैने गुण-कर्म के विभाजन से सृष्ट किया है । परन्तु सृष्टिकर्ता होने के कारण मुझे अकर्ता तथा विकार रहित समझो।

भगवान् श्रीकृष्ण ने द्वितीय अध्याय में धर्म का परिपालन के लिए उपदेश दिया है । धर्मोपदेश के छल में उन्होने क्षत्रिय वर्ण का कर्तव्य का निर्धारण भी किया है। यथा –

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥9

अर्थात् स्वधर्म को देखकर मनुष्य का भयभीत होना अनुचित है । क्योंकि क्षत्रिय के लिए धर्म युद्ध से बढकर अन्य कोई कल्याणकारी कर्तव्य नहीं हो सकता है। अतः इससे क्षत्रिय अनायास ही इच्छानुसार मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

गुणाधीश ब्रह्मन् त्रिगुणरूपी प्रकृति की सहायता से निर्लिप्त भाव में सृष्टि स्थिति इत्यादि कार्य करते हैं । सत्त्वगुणप्रधान ब्राह्म का स्वाभाविक कर्म यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन है । अल्पसत्त्वगुण विशिष्ट रजोगुण प्रधान क्षत्रिय का कर्म राज्यशासन, युद्ध करना है । अल्प तमोगुण विशिष्ट रजोप्रधान वैश्यों का कार्य कृषि, वाणिज्यादि तथा तमोगुण प्रधान शूद्रों का स्वाभाविक कार्य है उपरोक्त तीनों वर्णो की सेवा करना। भगवद्गीता में स्पष्ट है –

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप ।

कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणः ।।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।

दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।

परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥ 10

स्वकर्म के अधिष्ठान से मनुष्य कैसे सिद्धि प्राप्त करता है, उस विषयमें भगवान् कहते है। यथा –

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।

स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु॥

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।

स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥ 11

अर्थात् अपने स्वाभाविक कर्मों में सदा चेष्टित मनुष्य भगवत्प्राप्तिरूप परमसिद्धि को प्राप्त करता है । जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति हुई और सारा जगत् व्याप्त है। उसी परमेश्वर को अपने कर्मों से मनुष्य प्राप्त कर सकता है। आचरण युक्त दुसरों के धर्म से स्वधर्म का पालन श्रेष्ठ है । क्योंकि नियतरूप से स्वधर्म पालन द्वारा मनुष्य पाप गति प्राप्त नहीं करता है।

ऊपरिलिखित श्लोकों में स्वयं श्रीकृष्ण यह स्पष्ट करते हैं कि योग्यता के अनुसार किया गया कर्म विभाजन समाज में ऊँच-नीच भावनाओं को कदापि प्रश्रय नहीं देता । परन्तु चारों वर्णों में धर्मों का निर्विघ्न पालन से शक्ति सामञ्जस्य स्वयं हि अतुट रहता है । शरीर का सबसे गुरुत्वपूर्ण अङ्ग पदद्वयस्वरुप शूद्र जन बल के आधार पर ही वैश्य धन देता है, क्षत्रिय धन जन की सुरक्षा करता है एवं ब्राह्मण धर्म-भगवत्प्राप्तिका मार्ग प्रदर्शन करता है । भारतीय वर्ण विभाजन चारों वर्णों का जन्म-कर्म निर्धारण पूर्वक सामाजिक श्रृङ्खला को दृढ करता है।

पुनश्च भारतीय वर्णव्यवस्था में सर्वाधिक आलोच्य वर्ण विभेद प्रसङ्ग में स्थित समानता का उदाहरण भी भगवद्गीता में प्राप्त होता है। यथा –

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥ 12

अर्थात् जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेम से पत्र-पुष्पादि अर्पण करता है, उस सुबुद्धि सम्पन्न भक्त के अर्पण को मैं सगुण रूप में प्रकट होकर प्रीति के साथ ग्रहण करता हूँ । मैं सर्वत्र व्यापक हूँ, न मेरा कोई प्रिय है न अप्रिय है । परन्तु जो भक्त मुझे निष्काम भाव से मनन करते है, वे मुझ में और मैं उनमें रहता हूँ । स्त्री, वैश्य, शूद्र, पाप योनि जो कोई मेरे शरण मे आता है, वो परम गति को प्राप्त करता है। इस प्रसङ्ग पर साधन समर के प्रसिद्ध लेखक ब्रह्मर्षि श्रीसत्यदेव गीता के नवम अध्याय(राजगुह्ययोग) के दृष्टिकोण से वर्णव्यवस्था को शृङ्खलित करने हेतु अपना मत प्रकट किये है । श्री सत्यदेव के अनुसार ब्राह्मणादि वर्ण तथा स्वभाव कर्मगत ब्राह्मणादि वर्ण दोनों प्रकार को स्वीकार कर लें । उससे देखा जाता है कि जो जाति ब्राह्मण है उनमें ये सभी कर्म द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार प्रकार के भेद ही है । अतः जाति ब्राह्मण, जाति क्षत्रिय, जाति वैश्य, जाति शूद्र को कर्म के आधार पर चार भागों में विभक्त किया जा सकता है । यह तालिका से स्पष्ट ज्ञात होता है । यथा –

ब्राह्मण जाति

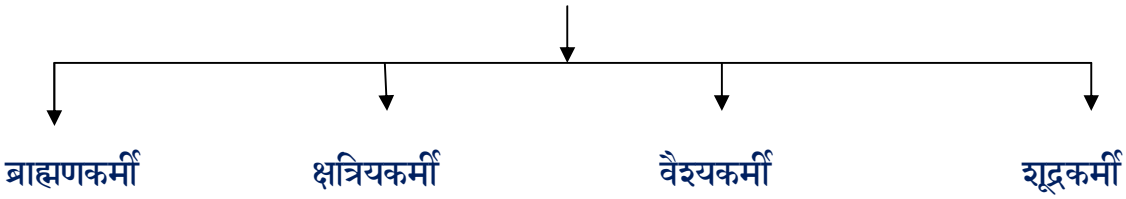

क्षत्रिय जाति

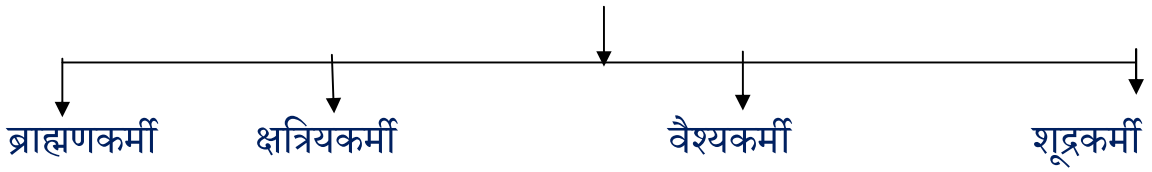

वैश्य जाति

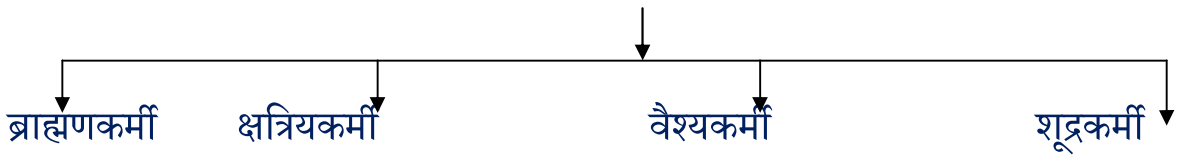

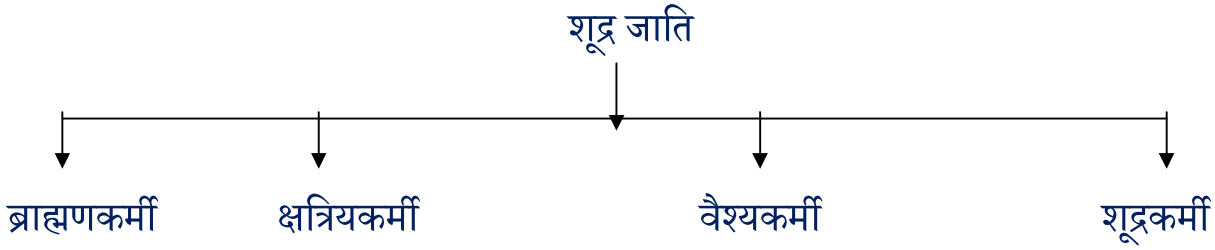

वर्तमान काल में चार वर्ण के बीच यह कर्मगत सोलह प्रकार का भेद परिलक्षित होता है । फिर यह सोलह प्रकार के बीच अवान्तर भेद भी बहुत है ।13

उपरिलिखित उपदेशों से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि –

1. जीवात्मा भक्तियोग से मुक्ति प्राप्त करती है।
2. भक्ति के विषय में सारे वर्णों के मनुष्य, स्त्री, पाप योनियों का समाधिकार है ।
3. गुणकर्म के अनुसार वर्णव्यवस्था होने पर तथा जन्मगत जातिप्रथा न करने से समाज में सनातन धर्म की प्रतिष्ठा सम्भव है । स्वभावज कर्म के द्वारा ब्राह्मणादि वर्णों का निर्णय होना चाहिए । परन्तु साम्प्रातिक काल में यह एक जटिल समस्या के रूप में उपस्थित है । इसका समाधान अत्रिसंहिता में ब्राह्मण वर्ण को दस श्रेणीयों में विभक्त करने के प्रसङ्ग में व्यक्त किया हुआ है ।

उपसंहार – भारतीय वर्णव्यवस्था के मूल उद्देश्यों को केवल इसके विरुद्धात्मक तर्क-वितर्क से प्रमाणित नहीं किया जा सकता है । वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में मिथ्या अवधारणा के कतिपय अज्ञानियों के विचारों का फलमात्र ही जातिवाद है । वैदिक सभ्यता में प्रस्तुत वर्णव्यवस्था समाज में उन्नति तथा सहृदय भावना अतुट रखने का उपाय थी परन्तु साम्प्रतिक काल में वाह्य संस्कृति के प्रभाव से यह आज जातिप्रथा रुपक व्याधि के रूप प्रसिद्ध है। अतः जनमानस में हिन्दू धर्म और इस पद्धति के विषय में स्थित अन्धविश्वास का दूरीकरण विचारशील विद्वानों का परमोद्देश होना चाहिए ।

सन्दर्भ एवं ग्रन्थसूची –

1.पुरुषसूक्तम् - १२

2.बृहदारण्यकोपनिषद् – १.४.११ -१३

3.वही – १.४.१४ -१५

4.छान्दोग्योपनिषद् – ५.१०.७

5. मनुस्मृतिः – १०.१२

6.ब्रह्मसूत्र (शाङ्करभाष्य) – ३.१.८

7. वही – ३.१.२४

8.श्रीमद्भगवत्गीता – ४.१३

9. वही -२.३१

10. वही – १८.४१-४४

11. वही – १८.४५-४७

12. वही – ९.२६,२९,३२

13. श्रीमद्भगवत्गीता(राजगुह्ययोग) ४ संस्करण (श्री सत्यदेव) – पृ.१४२-१४३

सन्दर्भग्रन्थसूची

1.श्री जयदयाल गोयन्दका, सं २०६४,श्रीमद्भगवत्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर

2.सं २०६३, छान्दोग्योपनिषद, गीताप्रेस, गोरखपुर

3.सं २०६५, बृहदारण्यकोपनिषद, गीताप्रेस, गोरखपुर

4.स्वामी हनुमानदास षड्शास्त्री महाराज,२००३, ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम्, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी

5.ब्रह्मर्षि श्री सत्यदेव,१३८६, राजगुह्ययोग, श्रीमद्भगवत्गीता, साधन समर कार्यालय,कोलकाता

6. पि.भि. काणे,१९९२, धर्मशास्त्र का इतिहास, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लक्ष्नौ

वर्णव्यवस्था-विषये संस्कृतवाङ्मयस्य मतम्

विवेकशर्मा

कूटशब्दाः

शोधसारः

केषाञ्चिद्विदुषमभिप्रायो वर्तते यत् वर्णव्यवस्थायाः दृढीकरणे संस्कृत वाङ्मयस्य महद्योगदानमस्ति । नीरक्षीरविवेकेन दर्शने सति नैतत् समीचीनं प्रतिभाति। यतोहि संस्कृतवाङ्मये तु चिन्तनं तावत् उच्चस्तरे वर्तते यत्र न केवलं भारतमपितु समस्तविश्वमपि कटुम्बमेवास्ति[85] इत्यङ्गीकृतमस्ति। स्मृतिष्वपि प्राचीनकाले चत्वारो वर्णाः आसन् एव तत्र ते न हिजन्मना । तत्र ते तु कर्मणा एवाङ्गीकृताः। तद्यथा-

जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते

वेदपाठाद् भवेद् विप्रो ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः।।

श्रीमद्भगवद्गीतायामपि चतुर्णां वर्णानां विभाजनमपि गुणकर्मानुसारेण विहितमिति[86] ।वैदिकसंस्कृतकालेऽपि सर्वेषां कल्याणभावना मूलमन्त्ररूपेणासीत् ।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्

देवाभागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते ।।[87]

रामायणकालेऽपि भारते स्वच्छवर्णव्यवस्था आसीत् यतोहि दशरथः सुमन्त्रं प्रति अकथयत् यत् "यज्ञाय ब्राह्मणारभ्य शूद्रपर्यन्तम् आमन्त्रणं क्रियताम्" । एतेन ज्ञायते यत् यद्यपि तस्मिन् समये वर्णव्यवस्था आसीत्, परं शूद्राः अपि हेयाः नाऽसन् । समानतायाः स्पष्टोल्लेखः वर्तते रामायणे यथा-

निमन्त्रस्व नृपतीन् पृथिव्यां ये च धार्मिकाः

ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्याञ्शूद्रांश्चैव सहस्रशः।।[88]

जनाः मनुस्मृत्योपरि दोषारोपणं कुर्वन्ति यत् मनु वर्णव्यवस्थां जन्मनः स्वीकरोति, किन्तु नैतत् सत्यम् । यतोहि मनु अपि गुणकर्मणोः अनिवार्यतां स्वीकरोति एव । स्वयं मनुः कथयति, "यथा काष्ठनिर्मितो गजः अथवा चर्ममयः मृगः नाममात्रेण गजः मृगो वा भवतः, तथैव अध्ययनाध्यापनहीनः (आचारहीनो वा) ब्राह्मणोऽपि नाममात्रेणैव ब्राह्मणः भवति ।

---

[85] वसुधैव कुटुम्बकम्

[86] चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः

[87] ऋग्वेदः, 10/191/1

[88] रामायणम्, बालकाण्डम् ।

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः

यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति[89] ।।

विभाजनस्येयं प्रक्रिया वर्णव्यवस्थेति प्रथिता । "**तर्हि एतत् तु समाजस्य विकृतिः कोऽत्र संस्कृतस्य दोषः** "।

==========

अस्माकम् समाजे चिन्तनमस्ति यत् जातिप्रथायाः कारणमस्माकं संस्कृतिः संस्कृतमेवव् । तेषां कथनमस्ति यत् जातिव्यवस्थायाः दृढीकरणे संस्कृतस्य महत् योगदानमस्ति । किन्तु नैतत् समीचीनम्, यतोहि सामजिक-राष्ट्रिय-एकतयाः च विषये संस्कृतवाङमयेस्मिन् विद्वद्भिः पर्याप्तमात्रायां विवेचनं कृतम् । संस्कृतवाङ्मये तु चिन्तनं तावत् उच्चस्तरे वर्तते यत् अस्मिन् तु निर्देशो वर्तते यत् न केवलं भारतमपितु समस्तविश्वमपि कटुम्बमेवास्ति ।

अत एव साधूच्यते –

अयं निजः परो वेति गणना लघु चेतसाम् ।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।[90]

शोधपत्रेस्मिन् जातिप्रथायां संस्कृतस्य योगदानमस्ति न वा इत्यस्मिन् विषये विश्लेषणस्य एकः प्रयासः कृतः ।

स्मृति-ग्रन्थे वर्णितमस्ति यत् भारतीयाः श्रेष्ठाः ।

उक्तञ्च मनुना-

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।[91]

किमर्थमेतत् ? अस्य मुख्यः कारणःअस्ति "भारतीयसंस्कृतिः" या निश्चयेन संस्कृताश्रयी अस्ति । भारतीय संस्कृतौ विश्वबन्धुत्वस्योदात्ता भावना बाहुल्येन दृश्यते । अत्रत्याः आर्याः सकलविश्वकलयाणेच्छुकाः कदापि वैयक्तिकं सुखं नैच्छन् । तद्यथा भर्तृहरिणा गीर्वाण्याम् –

एके सत्पुरूषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये ।

सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्था विरोधेन ये ।।

---

[89] मनुस्मृतिः

[90] हितोपदेशः, 1/69

[91] मनुस्मृतिः, 2/20

तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय विघनन्ति ये ।

ये निघनन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ।।[92]

संस्कृतवाङमयः तु स्पष्टरीत्या उद्घोषयति यत् स्वार्थम्परित्यज्य परोपकारकरणशीलो एव श्रेष्ठो मनुष्यः । वेदेषु प्रार्थितः परमेश्वरो यत् वयं सर्वानपि प्राणिनो दिशश्च मित्रदृष्टया पश्याम । अतः सर्वोदय भावना मूलमाधत्ते-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ।।

अपि च अत्र तु ब्रम्हणः व्याप्तिः संसारस्य प्रत्येके जीवे मन्यते-

ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत् ।।[93]

इतोऽपि, अग्रे चिन्तयामश्चेत् तर्हि – राष्ट्रियैकतायै देशभक्तिः इति अनिवार्यतत्वमस्ति यतोहि आराष्ट्रे एकता तदैव भवितुमर्हति यद् तत्रत्य जनसमुहेषु राष्ट्रभक्तिः भवति चेत्, तदर्थम् उक्तञ्च महर्षिकपिलेन-

न यत्र देशोद्धृतिकामनाऽऽस्ते, न मातृभूमेर्हितचिन्तनं च ।

न राष्ट्ररक्षा-बलिदानभावः,श्मशानतुल्यं नरजीवनं तत् ।।

एतस्मात् कारणादेव भारतस्य भक्ति-विषये संस्कृतवाङमये पर्याप्तमात्रायां वर्णनं कृतं वर्तते-

गायन्ति देवाः किलगीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे

स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ।।[94]

तथा च-

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रैश्चैव दक्षिणम्

वर्षं तद् भारतं नाम भरती यत्र सन्ततिः ।।[95]

---

[92] नीतिशतकम्, 75

[93] ईशोपनिषद्, 1

[94] विष्णुपुराणम्, 2/3/24

[95] विष्णुपुराणम्, 2/3/1

एतादृशं वर्णनं कृते सत्यपि मिथ्यारोपः क्रियते आलोचकैः यत् वर्णव्यवस्थायै संस्कृतस्य तथ्यानुमतिः तु अस्त्यैव । एतस्याः समस्यायाः समाधानं कर्तुं संस्कृतसन्दर्भानां विषये चिन्तयाम चेत् तर्हि ज्ञायते यत् भारतीयसमाजस्य महती विशेषता अस्ति एषा वर्णव्यवस्था । एषा व्यवस्था अत्यन्तप्राचीनकालाद् विद्यमाना वर्तते । वस्तुतः अस्याः प्रथायाः निर्माणं ईश्वरेण कृतम्-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य कृतः

उरु तदस्य यद् वैश्यं पदभ्यां शूद्रो अजायत ।।[96]

अर्थात् विराटपुरुषात्मरुपिणः ईश्वरस्य मुखात् ब्राह्मणानां जन्म अजायत, बाहुभ्यां क्षत्रियस्य, उरुयुगलात् वैश्योत्पत्तिः एवञ्च पदभ्यां शूद्रो अजायत । एवमेव चत्वारो वर्णाः आसन्, किन्तु न जन्मना, तदा तु कर्मणा एव एतेषां वर्णानां सृष्टिः, केवलं समाजस्य सुव्यवस्थायै एव सञ्जाता एषा व्यवस्था । स्मृतिष्वपि एतदेव विधानं विद्यते । तद्यथा-

जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते

वेदपाठाद् भवेद्विप्रो ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः ।।

अर्थात् कोऽपि मनुष्यः जन्मतः न कस्यापि वर्णस्य भवेत्, संस्कारादेव स वर्णेषु परि गणितः भवेत् । श्रीमद्भगवद्गीतायामपि चतुर्णां वर्णानां विभाजनमपि गुणकर्मानुसारेण विहितमिति । यथा-

चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।।[97]

ऋग्वैदिककाले अस्याः वर्णव्यवस्थायाः जातिव्यवस्थायाः वा उल्लेखः न दृश्यते । यद्यपि वर्णः आसीत् आर्य-अनार्यौ अपि आस्ताम्, तथापि तौ आर्यानार्यौ गौरकृष्णौ भूत्वाऽपि जातिवाचकौ नास्ताम् ।

आधुनिकी एतादृशी वर्णव्यवस्था पुरा नासीत् । या वर्णव्यवस्था आसीत् सा तु किञ्चिद् भिन्नरुपेण । तदा तु एकस्यैव पितुः एकः पुत्रः ब्राह्मणधर्मस्य पालनं करोति स्म, अपरः क्षात्रधर्मस्य । एकः पुरोहितः भवति स्म, अन्यःराजा । यथा देवापिः, शन्तनुः (ऋष्टिषेणस्य पुत्रौ) प्रभृतयः। ऋग्वेदे 'कारु' स्वकीयाम् अभिलाषाम् अभिव्यनक्ति यत् मम माता चक्रयां (यन्त्रपेषण्यां) गोधूमचूर्णं करोति किं वा चूर्णपेषिणीं करोति, पिता भिषक् अस्ति, तद्वदेव वयमपि विभिन्नक्रियाभ्यः धनोपार्जनं कर्तुं अभिलाषिणः भवामः –

कारुरहं ततो भिषगुपेषिणी माता

---

[96] पुरुषसूक्तम्, १२

[97] श्रीमद्भगवद्गीता ।

नानाधियो वसूयवो अनगा इव तस्थितम् ।।

साम्यवादी भावना वैदिकसंस्कृतेः एकं महत्त्वपूर्णं वैशिष्ट्यं वर्तते । सर्वेऽपि देशीयाः वैदेशीयाः वा, एकस्यैव परमात्मनः पुत्राः ।तत्र किं कारणं भेदप्रथनम् । यदाऽभेददृष्टिः प्रवर्तते, तदा जगदिदं स्वर्गमिव चकासति । न तत्र मोहशोकादेरवसरः । न तत्र मोहशोकादेरवसरः । न च तदा विजुगुप्सा बाधते । न दुःखाग्निलेशोऽपि एकत्व बुद्धौ । अतएव यजुर्वेदे ईशोपनिषदि च उच्यते-

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ।।

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः

तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ।।[98]

सर्वेषां कल्याणभावना संस्कृतेरस्याः मूलमन्त्रोऽस्ति । तथा च समाम्नायते वेदेषु-

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्

देवाभागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते ।।[99]

उतो वा -

पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः ।।

एते मन्त्राः वैदिकसंस्कृतेः पारस्परिकसुमतिं, सद्भावं, मानवकल्याणभावनाम्, औदार्यं च समुद्घोषयन्ति । वैदिकी संस्कृतिः विश्वस्मै सुपथौ मार्गं स्वीकर्तुं व्यवहर्तुं चोपदिशति ।

समानता समत्त्वं वा भारतीयलौकिकसंस्कृतस्यापि महत्त्वपूर्णं तत्वमस्ति । रामायणकालेऽपि भारते स्वच्छवर्णव्यवस्था आसीत् यतोहि दशरथः सुमन्त्रं प्रति अकथयत् यत् "यज्ञाय ब्राह्मणारभ्य शूद्रपर्यन्तम् आमन्त्रणं क्रियताम्" । एतेन ज्ञायते यत् यद्यपि तस्मिन् समये वर्णव्यवस्था आसीत् परं शूद्राः अपि हेयाः नाऽसन । समानतायाः स्पष्टोल्लेखः वर्तते रामायणे यथा-

निमन्त्रस्व नृपतीन् पृथिव्यां ये च धार्मिकाः

ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्याञ्शूद्रांश्चैव सहस्त्रशः।।[100]

---

[98] यजुर्वेदः, 40/6-7

[99] ऋग्वेदः, 10/191/1

एवमेव गीतायाः मतमपि समाजिकसमानता विषये समानमेव । तद्यथा-

समत्त्वं योग उच्यते ।।[101]

विद्या विनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ।।[102]

जनाः मनुस्मृत्योपरि दोषारोपणं कुर्वन्ति यत् मनु वर्ण व्यवस्थां जन्मनः स्वीकरोति, किन्तु नैतत् सत्यम् । यतोहि मनु अपि गुणकर्मणोः अनिवार्यतां स्वीकरोति एव । स्वयं मनुः कथयति, "यथा काष्ठनिर्मितो गजः अथवा चर्ममयः मृगः नाममात्रेण गजः मृगो वा भवतः, तथैव अध्ययनाध्यापनहीनः (आचारहीनो वा) ब्राह्मणोऽपि नाममात्रेणैव ब्राह्मणः भवति । तद्यथा-

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः

यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम विभ्रति[103] ।।

मूलतो वर्णस्यार्थो रंगः एव तथापि तदाधारेण कर्मानुगुणम् याः जातयः कल्पिताः, परवर्तनी काले ताः एव जन्मना परिणताः । विभाजनस्येयं प्रक्रिया वर्णव्यवस्थेति प्रथिता । " **तर्हि एतत् तु समाजस्य विकृतिः कोऽत्र संस्कृतस्य दोषः**" । यतोहि प्रारम्भिकयुगे सर्वेऽपि मानवाः ब्राह्मणादिकुलरहिताः एकवर्णाः आसन्, निसंदिग्धमेव । कालान्तरे विविधाः वर्णाः कर्मक्रियाविशेषेण संजायते । महाभारते यथा-

एकवर्णमिदं पूर्वं विश्वमासीद्युधिष्ठिरः ।

कर्मक्रियाविशेषेण चतुर्वर्णं प्रतिष्ठितम् ।।

संक्षेपेण वदामश्चेत् तर्हि पुराकाले समाजस्य सुव्यवस्थायै एव वर्णव्यवस्था कल्पिताऽसीत् । वस्तुतः इयं वर्णव्यवस्था भारतस्य निसर्गतः आत्माऽस्ति, प्राणस्वरुपा च वर्तते । अत एवोक्तम् –

चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानं यस्मिन् देशे न विद्यते

तं म्लेछदेशं जानीयादार्यावर्त्तस्ततः परम् ।।

---

[100] रामायणम्, बालकाण्डम् ।

[101] श्रीमद्भग्वद्गीता, 2/48

[102] तत्रैव, 5/18

[103] मनुस्मृतिः

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. मनुस्मृति, प० रामेश्वरभट्ट, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 38 यू० ए०, जवाहरनगर, दिल्ली-110007, पुनर्मुद्रण 2011
2. ऋक्सूक्तसंग्रहः, व्याख्याकारः डा० हरिदत्त शास्त्री, प्रकाशक-साहित्य भंडार – सुभाष बाजार- मेरठ-2, संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण
3. श्रीमद्भगवद्गीता(श्लोकार्थ सहित), गीताप्रेसगोरखपुर, संवत् 2060
4. श्रीमद्वाल्मीकि रामायण(प्रथम खण्ड), गीताप्रेसगोरखपुर, संवत् 2069
5. हितोपदेशः, संस्कृत टीकाकार – श्रीगुरुप्रसाद शास्त्री, भाषाटीकाकार – श्रीसीतारामशास्त्री, सम्पादक – प्रो० बालशास्त्री, प्रकाशक चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, गोपाल मन्दिर लेन,पोस्ट बोक्स न० – 1129, वाराणसी
6. शतकत्रयम्, पुरोहित गोपीनाथ, प्रकाशक - भारतीय कला प्रकाशन, नारंग कलोनी, त्रिगर्त नगर, दिल्ली-110035, प्रथम संस्करण - 2010
7. ईशादि नौ उपनिषद्, कोड 1421, गीताप्रेसगोरखपुर, संवत् 2068
8. विष्णुपुराण, सम्पादक नागशरणसिंह, प्रकाशक- नाग पब्लिशर्ज़, 11ए०, जवाहर नगर, दिल्ली-7, संस्करण – 1984

चित्त के सन्दर्भ में गुणत्रय की महत्ता

कृष्णा शर्मा

कूट-शब्द चित्त, विश्व, वैदिकपरम्परा, पुराण।

शोध-सार

भारतीय ज्ञानपरम्परा अविच्छिन्न रूप से भारतीय संस्कृति में अनुस्यूत रहकर परस्पर अभ्युदय के संवाहिका के रूप में विश्वमानस पटल को झङ्कृत करती रही है। इस ज्ञानपरम्परा के शाखाप्रशाखा के रूप में विविधशास्त्र पुष्पित एवं पल्लवित होकर मानवजीवन को आप्यायित करते रहे हैं। ऐहिक एवं आमुष्मिक चिन्तन को आत्मसात करते हुए योगशास्त्र एवं विविध आचारशास्त्र प्रवृत्त हुए। आचारशास्त्रों में गर्भाधान से दाह संस्कारपर्यन्त शुचिता को ध्यान में रखा गया है। वहीं योगशास्त्र में चित्तवृत्तिनिरोध द्वारा चरमलक्ष्य के सन्दर्भ में गूढ चिन्तन किया गया है।

प्रकृत शोधपत्र में योगदर्शन एवं मनुस्मृति के आलोक में चित्त के सन्दर्भ में सात्विक-राजसिक और तामसिक गुणों की महत्ताविषयक गभीरगवेषण प्रस्तुत किया गया है।

==========

चित्तशोधन विषय पर प्राचीन काल से ही अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं । भारतीय संस्कृति वैदिक परम्परा के अनुसार ही सम्बद्ध रही है। अतः सम्पूर्ण विश्व की आधाररूपी हमारी संस्कृति में ग्रन्थों के माध्यम से जीवनशैली के आचार-सदाचार के नियम उल्लिखित हैं। क्योंकि सनातन धर्म में जन्म से पूर्व एवं मृत्युपर्यन्त संस्कार किये जाते है, जिनका प्रयोजन केवल चित्त को निर्मल करना व्यवहार कुशल बनाना व सदाचार में प्रवृत्त कराना है, अर्थात् जिसे हम संक्षेप में चित्त की शुद्धि भी कह सकते है।

चित्त शोधन के पश्चात हमें चित्त की एकाग्रता प्राप्त होती है। अतः महर्षि पतञ्जलि प्रदत्त योग के माध्यम से चित्त को स्थिर करके मोक्ष की प्राप्ति सम्भव हो सकती है उन्होने कहा है- **''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः''**[104] सामान्यतः चित्त इन्द्रियों

[104] पतञ्जलियोगसूत्रम् - (अध्याय 1, पाद 1, सूत्र 2)

के माध्यम से ज्ञानार्जन करता हुआ क्रिया का सम्पादन करता है। चित्तवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न विषयों में संलग्न रहती है। जिनके विषय परिवर्तन के लिए निरोध मार्ग आवश्यक है। विष्णुपुराण में कहा है -

विषयेभ्यः समाहृत्य विज्ञानात्मा मनो मुने।

चित्तयेन्मुक्तये तेन ब्रह्मभूय परेश्वरम्।।

आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्ठा या मनोगतिः।

तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते।[105]

अर्थात् चित्त को विषयों से विमुख करके ईश्वर चिन्तन के द्वारा ब्रह्मप्राप्ति होती है। मन की यह अवस्था योग नाम से जानी जाती है तथा योग साधन के लिए यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधि का विस्तृत ज्ञान आवश्यक होता है।

मनु प्रतिपादित गुणों का चित्त पर प्रभाव -

1. सतोगुण का प्रभाव - वस्तु का यथार्थ ज्ञान ही सत्व गुण का मुख्य लक्षण है। आत्मा में सब प्रीतीयुक्त प्रतीत हो, क्लेश रहित एवं प्रकाशमान व सरल, सहज बोध हो उसे ''सत्वगुण'' जानना चाहिये। वेदों का अभ्यास प्राजापत्यादिव्रत चान्द्रायणादि व्रत तप, ज्ञान अथवा शास्त्रज्ञान, शुद्धि (शारिरिक व मानसिक) इन्द्रियसंयम, दान, धर्मकार्य यज्ञादि और आत्मान्वेषण अध्यात्म ज्ञान का चिन्तन ये भी सत्वलक्षण कहे जाते है।

2. रजोगुण का प्रभाव -रजोगुण से युक्त व्यक्ति में प्रतिकूल ज्ञान की अधिकता होती है। जो दुःख से युक्त हो अप्रीतिकारक तथा शरीरियों को विषयों की ओर आकृष्ट करने वाला प्रतीत हो, उसे तत्त्वज्ञान प्रतिपक्षी अथवा विरोधी जानना चाहिये तथा आरम्भ किये गये काम में रूचि न होना, धैर्य का अभाव होना, शास्त्रवर्जित आचरण तथा सर्वदा रूपरसशब्दादि विषयों में आसक्ति ये सब राजसिक गुण के लक्षण माने जाते है। मनु ने कहा भी है -

आरम्भरूचिताऽधैर्यमसत्कार्यपरिग्रहः।

विषयोपसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम्।।[106]

---

[105] विष्णुपुराण - 6-3

[106] मनुस्मृति - 12/32

तथा यह भी शास्त्रोक्त माना जाता है कि इस संसार में मनुष्य जिस काम को करके अत्यधिक प्रसिद्धि को प्राप्त करना चाहता है और वह उस काम के असफल होने पर शोक नहीं करता उसे भी रजोगुण का लक्षण जानना चाहियें।

3.- तमोगुण का प्रभाव -जो मोहयुक्त सत्-असत् अर्थात भले-बुरे विचार से शून्य हो, जिसके विषय का आकार अस्पष्ट हो तथा जो तर्क से शून्य एवं अन्तःकरण और बहिष्करण द्वारा दुर्ज्ञेय हो उसे ''तमोगुण'' समझना चाहिये। लोभ, निद्रा, अधैर्य क्रूरता, नास्तिकता, नित्यकर्म का त्याग, मांगने का स्वभाव होना और प्रमाद ये तामसिक गुण के लक्षण है। तथा मनुष्य जिस काम को करके, करता हुआ तथा भविष्य में करने वाला होकर लज्जित होता है, उन सबको विद्वान ''तामस गुण'' का लक्षण समझते है।

अतः जो व्यक्ति जिस गुण से युक्त होता है। उसका चित्त उन्हीं कार्यों में रत रहता है और वह अपने कर्मों के अनुसार इस संसार में विभिन्न गतियों को प्राप्त करता है मनुष्य की गतियों के विषय में महर्षि मनु का मानना है, कि -

देवत्वं सात्त्विकाः यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः।

तिर्यक्तं तामसाः नित्यामित्येषा त्रिविधा गतिः।।[107]

अर्थात सात्विक अथवा सत्त्वगुण का व्यवहार करने वाले देवत्व को, राजस या रजोगुण का व्यवहार करने वाले मनुष्यत्व को और तामस या तमोगुण का व्यवहार करने वाले तिर्यक्त्व को अर्थात् पशु-पक्षी, वृक्ष-लता, गुल्म आदि की योनियों को प्राप्त करते है। ये तीन प्रकार की गतियाँ भी कर्म तथा विद्या आदि की विषेषता से जघन्य, मध्यम व उत्तम पुनः तीन प्रकार अप्रधान गतियाँ होती है। जिनमें सर्वप्रथम उत्तम सात्विक गति के विषय में बताना चाहूंगी, जिनमें चतुर्मुख ब्रह्मा, विष्वसृष्टा मरीचि आदि, शरीर-धारी धर्म, महान्, अव्यक्त (सांख्य प्रसिद्ध दो तत्व) इत्यादि आते हैं। तथा विधिपूर्वक यज्ञानुष्ठान करने वाले यज्वा, ऋषि देव, वेद इतिहास-प्रसिद्ध शरीरधारी, वेदाभिमानी देष विशेष, ज्योति (ध्रुव आदि वर्ष, इतिहास प्रसिद्ध शरीरधारी वत्सर) पितर (सोमपादि) और साध्य (देवयोनि विशेष) ये मध्यम सात्विकी गतियाँ है। तथा तपस्वी (वानप्रस्थी), यति ब्राह्मण, वैमानिकगण जो विमान द्वारा आकाश में विचरण करते हैं और नक्षत्र व दैत्य (प्रह्लाद, बलि आदि) ये जघन्य सात्विक गतियाँ है।

---

[107] मनुस्मृति - 12/40

अब रजोगुण की तीनों गतियों के बारे में बात करते है - गन्धर्व, गुह्यक, यक्ष, देवानुचर (विद्याधर आदि) और अप्सरायें, ये सब उत्तम राजसी गतियाँ हैं तथा राजा क्षत्रिय, राजाओं के पुरोहित, शास्त्रार्थ आदि के विवाद को पसन्द करनेवाले ये सब मध्यम राजसी गतियाँ है और झल्ल-मल्ल, नट जैसे रंगमंच पर अभिनय कर जीविका चलने वाले, शस्त्रजीवी (सिपाही, सैनिक आदि) जुआरी तथा मद्यपी पुरूष ये जघन्य राजसी गतियाँ है।

अन्त में तामसी गुण से युक्त तीनों गतियों के बारे में जानेगें - चारण-बन्दी-भाट, सुवर्ण (पक्षी विशेष) कपटाचारी मनुष्य, राक्षस और पिशाच ये उत्तमतामसी गतियाँ है। हाथी, घोडा, शूद्र, निन्दित, म्लेच्छ, सिंह, बाघ और सूअर ये मध्यम तामसी गतियाँ है। स्थावर (वृक्ष-लता-गुल्म-पर्वत आदि अचर) कृमि, कीट, मछली सर्प, कछुआ, पशु, मृग ये सब जघन्य हीन तामसी गतियाँ है।

अतः तीनों गुणों से युक्त मनुष्यों का चित्त गुणानुरूप कर्मों मे रत रहता है तथा वैसे ही कर्मों के फलों को प्राप्त करता है। इसलिए मानवमात्र को सही मार्गदर्शन देने के लिए ही वेद, शास्त्र व साहित्यों का अध्ययन किया जाता है जिससे गलत दिशा में जा रहे चित्त के मार्ग को अवरोध कर सही दिशा प्रदान की जा सके। अनेक प्रयत्नों द्वारा चित्त को सही दिशा देने का प्रयास किया जाता है तथा हमारे शास्त्रोचित मार्गों का अनुसरण करना ही हमारा कर्त्तव्य है।

चित्त को उचित दिशा निर्देशन करने के लिए एकाग्रता की आवश्यकता होती है क्योंकि सतोगुण से रहित चित्त को एकाग्र कर सतोगुण में रत रखना अत्यन्त ही दुष्कर प्रतीत होता है। परन्तु शास्त्रों का अध्ययन कर चित्त को उस ईश्वर से एकाकार करने का प्रयास नित्यप्रति करना चाहिये । वैसे तो विद्वान लोग निर्गुण ब्रह्म की उपासना कर सभी सिद्धि व मोक्ष को सहज प्राप्त कर लेते है परन्तु सामान्य चित्तवृत्ति वाले मनुष्यों को इसे पूर्ण करने में कई जन्म लग जाते है। मूर्तिपूजा भी इसीलिए मानी जाती है ताकि हम उस ईश्वर को केन्द्र मानकर मूर्ति द्वारा ईश्वर के प्रति एकाग्रता को प्राप्त करने में सक्षम होते है। भजन, कीर्तन, नाम स्मरणादि द्वारा भगवत्प्राप्ति सहज हो जाती है।

वैसे हि धर्मशास्त्र में प्रदत्त यम-नियम-व्रत उपवासादि के द्वारा उन मार्गों को सशक्त किया जाता है। बालक को जन्म से पूर्व ही संस्कार दिये जाते है ताकि उसमें वैसे गुणों की वृद्धि हो सके तथा जन्म के बाद भी संस्कारों द्वारा चित्त का शोधन करने का प्रयास निरन्तर किया जाता है यहाँ तक की मरणोपरान्त भी संस्कार कर मोक्ष प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

चित्त का शोधन नहीं हो तो अशोधित चित्त में पुराने कर्मों द्वारा उपार्जित फल उपस्थित रहते है ओर वे सब पुनर्जन्म होने पर उस जन्म में उसके स्वभाव में स्वतः आ जाते है। याज्ञवल्क्य ने भी कहा है -

तत्रात्मा हि स्वयं किंचित्कर्म किंचित्स्वभावतः।

करोति किंचिदभ्यासाद्धर्माधर्मोभयात्मकम्।।[108]

अर्थात् कुछ संस्कार माता पिता द्वारा दिये जाते है कुछ पिछले जन्म से प्राप्त संस्कारों द्वारा उत्पन्न स्वभाव होता है तथा कुछ इसी जन्म में अर्जित गुणों व अभ्यास द्वारा प्राप्त स्वभाव होता है। अतः इन सबसे मिलकर मनुष्य पूर्णरूप से स्वभाव के स्वरूप को प्राप्त करता है इसलिए पूर्वजन्म प्रदत्त स्वभाव को बदला नहीं जा सकता उसे भोगा ही जाता है और माता-पिता द्वारा प्राप्त स्वभाव को भी बदलने में कठिनाई आती है। परन्तु जो स्वयं अर्जित संस्कारों से प्राप्त स्वभाव है उसे काफी हद तक बदला जा सकता है। उस के लिए गुरू प्रदत्त शिक्षा व स्वाध्याय से प्राप्त ज्ञानोपार्जित स्वभाव प्राप्त होता है। अतः ऐसे स्वभाव की अधिकता होने पर पूर्व स्वभाव के प्रभाव को भी कम करने में सक्षम हो सकते है।

इसी क्रम में यदि इतने चित्त शोधन प्रयास पश्चात भी कोई अज्ञानवश पापकर्म हो जाता है ओर उसका पछतावा प्रतीत हो तब उसके लिए प्रायश्चित्त बताए गये है। प्रायश्चित्त द्वारा चित्त का निर्मलीकरण करना भी धर्मशास्त्रीय मार्ग प्रशस्त है। ऋषि अंगिरा के अनुसार -

प्रायः नाम तपो प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते।

तपोनिश्चयसंयोगात् प्रायश्चित्तमिति स्मृतम्।।[109]

अर्थात् प्रायः तप को कहा जाता है तथा चित्त को निश्चय, और तप व निश्चय का संयोग होने पर ही प्रायश्चित्त संभव हो सकता है। अतः मनुष्य किसी भी कार्य को करने में तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक की उसका चित्त दृढ़ निश्चय नहीं कर लेता।

इस विचारमंथन द्वारा यही निष्कर्ष निकलता है, कि मनुष्य में कर्मप्रवृत्ति में चित्त का महत्वपूर्ण योगदान होता है और चित्तशुद्धि के लिए समय-समय पर मार्ग निर्देशन की आवश्यकता प्रतीत होती है। धर्मशास्त्र के अनुसार आत्मा तो शुद्ध व

---

[108] याज्ञवल्क्यस्मृति - 3/68

[109] गौतम धर्म सूत्र में उद्धृत पृ.सं 199

निश्छल होती है, परन्तु आत्मा एक शरीर के माध्यम से ही कर्मों में प्रवृत्त हो पाती है। अतः कर्म प्रवृत्त चित्त में राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है। इन्हीं विकारों को हटाकर चित्त को निर्मल बनाया जा सकता है।

इसके लिए धर्मशास्त्र में पग-पग पर प्रत्येक के लिए धर्म (नियम) बनाये गये है। सभी को धर्म का पालन करना अनिवार्य है। जैसे ब्रह्मचारी के धर्म, गृहस्थ-वानप्रस्थ व सन्यासी के धर्म। ब्राहमण-क्षत्रिय-वैश्य शूद्रादि के धर्म, स्त्री धर्म, पुरूष के धर्म, साधारण धर्म आपद्धर्म इत्यादि। अतः इनका पालन करते हुये अपने धर्म में स्थित रहते हुये मनुष्य को मोक्ष की सहज ही प्राप्ति हो जाती है। अतः याज्ञवल्क्य कहते है कि -

ध्यानयोगेन संपश्येत्सूक्ष्म आत्मनि स्थितः।।[110]

अर्थात् चित्त की वृत्तियों को योग द्वारा रोककर, स्वयं में स्थित आत्मा को ध्यान द्वारा देखना चाहिये।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. पतञ्जलियोगसूत्रम् चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, सन्-1983
2. मनुस्मृतिः - चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी - वि.सं.-2066
3. याज्ञवल्क्यस्मृति - चैखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली-सन् - 1999
4. विष्णुपुराण - नाग पब्लिशर्स जवाहर नगर दिल्ली-1985
5. गौतम धर्मसूत्रम् - चैखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी सन्- 1986

[110] याज्ञवल्क्यस्मृति - 3/64

लेखकानां सूची

I	प्रस्फुटम्		
1	सम्पादकीयम्	सदानन्दझा	व्या.विभागाध्यक्षः, जगदीशनारायणब्रह्मचर्याश्रम-आदर्श-संस्कृतस्नातकोत्तरमहाविद्यालयः, लगमा, दरभङ्गा, बिहार
2	प्रकाशकीयम्	बिपिनकुमारझा	सहित्यविभागः, वेदव्यासपरिसरः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, हि०प्र०
II.A	साहित्यानुरागः		
1	किरातार्जुनीय में हिमालय के पर्यावरणीय अवयव	1.सुश्री मनीषा कश्यप 2. विनीत घिल्डियाल	1. अतिथि प्रवक्ता (संस्कृत), राजकीय महाविद्यालय, गुप्तकाशी (विद्यापीठ),रुद्रप्रयाग, उत्तराखण्ड। 2. अध्यक्ष- संस्कृत विभाग, हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल (केन्द्रीय) विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड।
2	याज्ञवल्क्यस्मृतौ स्तेयप्रकरणे समाजव्यवस्थायाः परिशीलनम्	हीरालालदाशः	सहायकाचार्यः, श्रीचन्द्रशेखरेन्द्रसरस्वतीविश्वमहाविद्यालय, एनात्तूर, काञ्चीपुरम्, तमिलनाडू
3	अष्टादशशताब्द्यां काश्मीरशैवदर्शनम्	नरेन्द्रभारती	कनिष्ठशोध-अध्येता, (ICPR), श्रीरणवीरपरिसरः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, जम्मू
4	धर्मशास्त्रोक्तानां संस्काराणां प्रासङ्गिकता	एम्. गजलक्ष्मी	शोधछात्रा, संस्कृतविभागः, पण्डिचेरी विश्वविद्यालयः, पण्डिचेरी
5	अध्यात्मरामायण में निहित सांस्कृतिक तत्त्वों की अद्यतन उपयोगिता	गीताशुक्ला	सहाचार्या, संस्कृतविभाग, भगवानदीन आर्यकन्या स्नातकोत्तरमहाविद्यालय, लखीमपुरखीरी, उ. प्र.
6	ऋग्वेदे मनस्तत्त्वपरिशीलनम्	नीलमाधवप्रधानः	शोधच्छात्रः, श्रीचन्द्रशेखरेन्द्रसरस्वतीविश्वमहाविद्यालय,

			एनात्तूर, काञ्चीपुरम्, तमिलनाडू
7	अथर्ववेद औषधीनां परिशीलनम्	लिपनकुमारमाझि	शोधच्छात्रः, श्रीचन्द्रशेखरेन्द्रसरस्वतीविश्वमहाविद्यालय
8	अथर्ववेदे प्रकृतेः स्वरूपम्	निर्मल राउल	शिक्षाशास्त्रविभागः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, श्रिङ्गगिरिः।
9	वास्तुमालादिशा गृहे ग्राह्याग्राह्यवृक्षाणां समीक्षणम्	गीताञ्जलिनायक	व्याख्यातृ, संस्कृतविभागः, विलामेरीमहाविद्यालयः (महिला), हैदराबादः, तेलङ्गाना।
10	प्रस्थानत्रयी में वर्णव्यवस्था	सुश्रीसस्मितापति	गवेषिका, पण्डिचेरी विश्वविद्यालय, पण्डिचेरी
11	वर्णव्यवस्था-विषये संस्कृतवाङमयस्य मतम्	विवेकशर्मा	शोधच्छात्रः, वेदव्यासपरिसरः, राष्ट्रियसंस्कृत-संस्थानम्, हि०प्र०
12	चित्त के सन्दर्भ में गुणत्रय की महत्ता	कृष्णा शर्मा	सहायकाचार्या, धर्मशास्त्रविभाग, जयपुर परिसर राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थान, जयपुर

Important dates for next Issue-

- ✓ DEADLINE FOR SUBMISSION- 01.09. 2016
- ✓ NOTIFICATION FOR ACCEPTANCE-10.10.2016
- ✓ INAUGRATION-14.10.2016

Send your paper

mail@sarasvatniketanam.org

jahnavisanskritjournal@gmail.com